

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178875

UNIVERSAL
LIBRARY

mania University Library

Accession No. ⁴¹2786

6R

कुशवाहा कोन
रतमन्दिर

ok should be returned on or before the date last

भूमिका

भूमिका लिखने की मेरी आदत तो नहीं, परन्तु आज एक ऐसा उपन्यास मैं आपके सामने रख रहा हूँ, जो आपको आश्चर्य में अवश्य डाल देगा, अतः कुछ लिख देना अच्छा होगा !

अब तो मैं बूढ़ा हो चला हूँ, यद्यपि लोग मुझे अब भी जवान ही समझते हैं। इससे मिट गई, अरमान लुट चुके, व्यस्तता की चक्की में पिसते-पिसते भरी जवानी में ही बुढ़ापा आ जाय, तो आश्चर्य ही क्या ?

तो मेरा यह उपन्यास 'रक्तमन्दिर' मेरे जीवन के पन्द्रहवें साल की वह यादगार है जिसने इस जमाने में मेरी सफलता का निर्माण किया है। हाई स्कूल में पढ़ रहा था उस समय। रात में बैठे-बैठे कभी-कभी लिखने का पागलपन कर बैठता था। छुपाने की बीमारी नहीं लगी थी, जो कुछ लिखता था उसे अपने से ही पढ़कर सन्तोष करना पड़ता था। कोई रास्ता दिखाने वाला न था। अतः अन्धकार में ही ट्योलता हुआ मेरा मस्तिष्क अपने पागलपन पर सन्तुष्ट था।

आज पाठकों की कृपा से मेरी पुस्तकों का काफी प्रचार हो चला है। ऐसे समय 'रक्तमन्दिर' को पढ़कर क्या सोचेंगे, यह मुझे नहीं मालूम। फिर भी वाल्यावस्था का प्रलाप समझकर ही इससे आप थोड़ा-बहुत मनोरंजन पाकर सन्तुष्ट हो सकें तो मेरा अहोभाग्य।

मेरे इस उपन्यास को बहुतरे पाठकों ने मेरे असली नाम (कुँवर कामताप्रसाद) से पढ़ा होगा। आज उसी की पुरानी हस्तलिपि में कुछ परिवर्तन करके इसे अपने प्रचलित नाम से आपके सम्मुख रख रहा हूँ। यदि आप ने इसे पसन्द किया तो बचपन में लिखे गये अपने अन्य उपन्यासों को भी कुछ परिवर्तित करके अपने प्रचलित नाम से आपके सामने पस्थित करूँगा।

रक्तमन्दिर

(भी कुशवाहा 'कान्त')

१

आज का चुनार प्राचीन इतिहास का एक समृद्धिशाली नगर है । यहाँ का किला तो प्रसिद्ध है ही, यहाँ के विषय में और भी बहुत सी किंवदंतियाँ प्रचलित हैं । सुना जाता है कि प्राचीन काल में यह एक वैभवशाली राज्य था ।

सूरज का गोला अब डूबना ही चाहता है ! पश्चिमीय आकाश पर छाई हुई प्रगाढ़ लालिमा इस बात की द्योतक है । पूर्व की ओर से शाम ६.११ हलका अँधेरा घिरा आ रहा है ।

चुनार राज्य के अधोश्वर महाराज खड्गबहादुरसिंह व्यस्त दिनचर्या से खाली होकर थोड़ी देर पहिले बारहदरी में आकर बैठे हैं और चारों

और दृष्टि डालकर उद्यान के हरे-भरे खुशनुमा पौधों को देख रहे हैं। यह उनका नित्य का कार्य है।

उसी समय एक चोबदार ने आकर सिर झुकाया और बोला—
“महाराज ! एक आदमी आपसे मिलना चाहता है !”

“भेज दो !” महाराज ने आज्ञा दी।

चोबदार चला गया और महाराज खंगबहादुर इल्मीनान के साथ आसन पर बैठ गये। यह तो उनके मिलने का वक्त नहीं है, फिर कौन उनसे मिलना चाहता है ! शायद कोई व्यक्ति किसी आवश्यक कार्य से उनके दर्शन करना चाहता है।

थोड़ी ही देर बाद एक लम्बे कद का आदमी महाराज के सामने आ खड़ा हुआ और उसने झुककर महाराज को अभिवादन किया। उसके मुँह पर परेशानी के लक्षण थे। कपड़े भी मैले-कुचैले और फट गये थे, फिर भी ऐसा लगता था कि कभी उसने अच्छे दिन अवश्य देखे होंगे।

“तुम क्या चाहते हो और किस काम से इस बेवक्त मुझसे मिले ?” महाराज ने पूछा।

वह आदमी एक सूखी हँसी हँसा, जिससे उसकी सुन्दर मुखाकृति बहुत कुछ भदी हो गई। बोला वह—“मैं एक बहुत ही जरूरी काम से आपके पास आया हूँ। यदि वह कार्य सफल हुआ तो वह हम दोनों ही के लिये बहुत लाभदायक होगा। शायद आपने मेरा नाम सुना हो। मैं प्रेमनगर का भूतपूर्व अधीश्वर हूँ !”

महाराज खंगबहादुर आश्चर्यचकित होकर बोले—“आप ?...प्रेमनगर के महाराज रसिकरसाल हैं। आइये, आइये इधर बैठिये !”

महाराज खंगबहादुर ने उस आदमी को बड़ी आवभगत के साथ अपने आसनपर बैठने की जगह दी।

वह आदमी बोला—

“समय का चक्र है महाराज खंगबहादुर ! नहीं तो क्या आज मैं दर-
र की ठोकरें खाता होता ?... फिर भी मैंने आशा नहीं छोड़ी है । इस
दुनिया में मेरा सबसे बड़ा शत्रु विजयसिंह है । जब तक मैं उससे बदला न
ले लूँगा मुझे चैन नहीं मिलेगा... पिछली दफे आप भी तो उसके हाथ से
खूब ठगे गये और आपने बिना समझे-बूझे अपनी पुत्री राजकुमारी कनक-
लता की शादी उसके छोटे भाई दुर्जय सिंह से कर दी । खैर, बीती बातों
को भूल ही जाना अच्छा है । मुझे भी उस दुष्ट विजयसिंह ने कैद कर लिया
था, मगर मैं अवसर पाते ही निकल भागा !”

“आप गलत कह रहे हैं महाराज रसिकरसाल ! विजय ने क आदमी
है । उसके छोटे भाई दुर्जयसिंह से मैंने अपनी पुत्री की शादी करके
अच्छा ही किया । उसके लिये मुझे तनिक भी पश्चाताप नहीं है ।
आपका राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया और आप दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं,
इसमें विजयसिंह का उतना दोष नहीं जितना कि स्वयं आपका है ।
विलासिता से राज्यों की नाँव हिल जाती है । मैं आपके विषय में सब कुछ
जानता हूँ और मुझे विश्वास है कि विजय सर्वथा निर्दोष है !” महाराज
खंगबहादुर बोले ।

“आप भी ऐसी बातें कहेंगे इसका मुझे विश्वास न था । एक दिन
आप भी तो विजयसिंह की जान के प्यासे थे और विजयसिंह ने भी आपको
कम कष्ट नहीं दिये थे !”

“वह सब पुरानी बातें हैं महाराज रसिकरसाल ! और मैं स्वीकार करता
हूँ कि उसमें मेरी ही गलती थी !”

“इस विवाद को हम यहीं बन्द कर दें तो अच्छा है !”—रसिक
बोला—“मैं एक दूसरे ही काम से आपके पास आया हूँ । वह बात
बहुत गुप्त है, परन्तु बिना किसी योग्य साथी के मैं अकेला वह काम नहीं
कर सकता, इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप ध्यान से मेरी बातें सुनें और
से उचित समझें तो मेरा साथ दें । याद रखिये अगर हम दोनों सफल

हो गये तो सोने और हीरा-मोतियों का इतना अंबार लग जायगा कि हम दोनों के राज्यों में उन्हें रखने की जगह भी न मिलेगी !”

सुनते ही महाराज खंगबहादुर चौंककर बोले—“कहाँ की बातें कर रहे हैं महाराज रसिक ! सोने और जवाहरात हमें मिलेंगे ही कहाँ ?”

“सुनिये तो ! रूपनगर को तो आप जानते ही होंगे । आज वह सारा शहर खंडहर बना पड़ा हुआ है । प्रकृति की लीला विचित्र है । उन खंडहरों के बीच एक भयानक पीतल की मूर्ति है । वह मूर्ति तिलस्माती है और ठीक आदमी की तरह बोलती है । एक दिन मैं उधर से गुजर रहा था तो देखा कि वह मूर्ति बोल रही है !...”

“क्या बोल रही थी ?”

वह कह रही थी—“आओ, मैं तुम्हें एक दूसरे देश में ले चलूँगी, जहाँ सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है । जहाँ सोने की चट्टाने पत्थर के टुकड़ों की तरह इधर-उधर फँकी रहती हैं !”

“अच्छा !” महाराज खंगबहादुर आश्चर्य में भर कर बोले ।

“उस मूर्ति की यह बातें सुनकर मैं विस्मय से भर उठा !” रसिक बोला—“मगर बाद को पता लगाने पर मालूम हुआ कि उस मूर्ति के नीचे से एक सुरंग एक दूसरे ही देश को गई है । उस देश में रक्तमन्दिर नामक एक भयानक मंदिर है । उस मंदिर में अगणित रत्न रखे हुए हैं ।”

“आप स्वप्न की बातें कर रहे हैं श्रीमान !”

“नहीं महाराज खंगबहादुर ! मैं सत्य कह रहा हूँ । मैंने विचार कर लिया है कि उसी सुरंग द्वारा उसी विचित्र देश में चलूँ और रक्तमन्दिर के खजाने को अपने अधिकार में कर लूँ ! मैं शीघ्र ही प्रस्थान करना चाहता हूँ । मुझे आशा है कि आप भी मेरा साथ अवश्य देंगे । जो धन हमें वहाँ मिलेगा, उसे हम दोनों आधा-आधा बाँट लेंगे । इसके अतिरिक्त एक नये देश में चलने पर कितना कौतूहल, कितना मनोरंजन होगा इस पर भी तो ध्यान दीजिये ! हमारे आप के विचारों में मतभेद

अवश्य है, लेकिन इतनी बड़ी धन राशि का जहाँ सवाल है वहाँ हम दोनों को साथ ही मिलकर काम करना चाहिये !”

चुनार अवीश्वर कुछ सोचने लगे । वे यह जानते थे कि रसिकरसाल नीच-प्रकृति का है, फिर भी जो कुछ वह कह रहा है यदि वह ठीक उतरा तो इसमें शक नहीं कि महाराज खंगबहादुर को एक बहुत बड़ा खजाना मिल जायगा ।

कुछ सोचकर बोले महाराज खंगबहादुर—“मुझे स्वीकार है महाराज रसिक, मैं आपका साथ दूँगा !”

“तो शीघ्र चलिये ! राजकाज कुमार और मंत्री को सौंप कर तुरन्त चलने की तैयारी कर लीजिये । हाँ, इस बात का ध्यान रखें कि किसी को यह न मालूम हो कि आप कहाँ जा रहे हैं ? पर्यटन का बहाना अच्छा रहेगा ।

“आप यहीं ठहरें, मैं अभी आया । क्या साथ में दो तमंचे ले चलना ठीक होगा ?”

“अवश्य !” रसिकरसाल बोला—“और बहुत से कारतूस भी । न जाने कब आवश्यकता पड़ जाय ?”

खंगबहादुर चले गये और दो-तीन घण्टों बाद पूरी तैयारी किये हुए वापिस लौटे । बोले—

“सब प्रबंध कर दिया है । अब हम लोग चल सकते हैं !”

रात्रि का अंधकार चारों ओर फैल चुका था जब कि खंगबहादुर और रसिकरसाल लोभ के वशीभूत होकर उस नये देश की खोज में निकल पड़े ।

काफी दूर निकल जाने पर जङ्गल मिलने लगा । शेरों के गर्जन और भेड़ियों के कोलाहल के बीच से होकर वे दोनों आगे बढ़ते जा रहे थे, सशंक दृष्टि से चारों ओर देखते हुए ।

कई कोस दक्षिण की ओर निकल जाने पर रूपनगर के खंडहर मिलने

लगे । वही रूपनगर जो कुछ दिन पहले अपनी सुन्दर दृश्यावलियों एवं भव्य अट्टालिकाओं के लिये प्रसिद्ध था, इस समय निरीह खंडहर के रूप में पैरों के पास पड़ा हुआ भूमि पर लोट रहा था ।

खण्डहर के बीच में चमचमाती हुई पीतल की वह मूर्ति दिखाई पड़ी । ये दोनों आदमी निर्भीकतापूर्वक उस विकराल मूर्ति के पास चले गये ।

वह मूर्ति एक भयानक दानव की थी जो एक ऊँचे चबूतरे पर पलथी मार कर बैठी हुई थी । उसके दोनों हाथ घुटनों पर थे ।

इन दोनों को देखकर उस तिलस्मी मूर्ति ने अपनी बड़ी-सी जिह्वा बाहर निकाली और अपने होठ चाटे, फिर तीव्र स्वर में बोली—“आओ, मैं तुम्हें एक नये देश में ले चलूँगी, जहाँ सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है ।”

रसिक कुछ आगे बढ़ा और बोला—

“हम लोग आये हैं । हमें उस देश में ले चलो !”

मूर्ति बोली—

“आओ मेरे पास, चबूतरे पर चढ़कर मेरे पास आओ !”

दोनों व्यक्ति उस ऊँचे चबूतरे पर चढ़ कर भयंकर मूर्ति के पास चले गये ।

ज्योंही वे दोनों उसके नजदीक पहुँचे कि उस विकराल मूर्ति ने अपने भयानक हाथ बढ़ाकर उन दोनों की गरदन पकड़ लीं और बाँदलों के गरजने की-सी आवाज में बोली—“चलो, बहुत दिन बाद नरमाँस खाने को मिला !”

उसने अपना मुँह खोला । इतना विकराल और बड़ा था उसका मुख कि समूचा आदमी निगल जाय । मूर्ति ने एक बार रसिक की ओर देखा और जोरों से अपने दाँत कटकटायें ! उस अँधेरी रात्रि में दाँतों की वह कटकटाहट बड़ी ही भयंकर सुनाई पड़ रही थी ।

रक्तमन्दिर, जिसका नाम रक्तमन्दिर था, चिह्ना उठा, लेकिन मूर्ति ने अपने मजबूत हाथों से उसे उठाकर मुँह में रख लिया ।

“घुट्ट” की आवाज हुई और रसिकरसाल को वह भयानक मूर्ति समूचा ही अपने पेट में निगल ले गई ।

खगबहादुर रसिक की यह दुर्दशा देखकर छुटपटाने लगे । उन्हें बहुत दुःख हो रहा था कि क्यों उन्होंने रसिक का कहना माना लेकिन उनका छुटपटाना, रोना-चिह्नाना सब व्यर्थ था । पीतल की उस विकराल दानवाकृति मूर्ति ने खगबहादुर को भी अपने मुँह में रख लिया ।

×

×

×

×

विजय एक ऐसा आदमी था जिसने साहस के साथ दुर्दमनीय विपत्तियों का सामना किया था । वह परिस्थितियों का दास होना नहीं जानता था । उसने परिस्थितियों को स्वयं अपना दास बनाना सीखा था । वह माता का अन्यन्य भक्त था, परन्तु जब उसने देखा कि उसके जीवन-व्रत की पूर्ति असंभव है तो अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये बंधु-बोधव, राज-पाट तथा प्रिय जननी, सबको त्याग देने का निश्चय कर लिया । दुनिया में वे दो भाई थे । दुर्जय उससे छोटा था । दोनों की सूरतें इतनी मिलती थीं कि देखकर पहचानना मुश्किल हो जाता था ।

प्रेमनगर के भूतपूर्व अधीश्वर रसिकरसाल को राजगद्दी से उतार कर विजयसिंह ने उस पर अपना अधिकार कर लिया था और अपने छोटे भाई दुर्जयसिंह को वहाँ का राजा नियुक्त कर दिया था ।

अब कर्मनिष्ठ विजय के लिए राज्य में कोई काम नहीं रह गया । प्रारम्भ ही से विपत्तियों का सामना करनेवाले विजय को बेकार बैठे रहना अप्रिय लगता था । अतः एक दिन उसने सबसे विदाई माँगी और अकेला ही निकल पड़ा । उसने अपने साथ कुछ भी नहीं लिया था । केवल एक भयानक तिलस्मी पोशाक ही उसके साथ थी । वह

पोशाक एक बनमानुष के शक्ल की थी और तिलस्मी होने के नाते उसमें बहुत-बहुत करामातें थीं जिनका वर्णन समय-समय पर मिलेगा ।

इस समय रात्रि का अंधकार चारों ओर फैला हुआ था । जंगल की नीरवता, जंगली जानवरों की गरज से कभी-कभी भंग हो जाती थी । ऐसे ही समय भयानक जंगलों के बीच से विजयसिंह बढ़ा चला जा रहा था । वह तिलस्मी पोशाक इस समय उसके कंधे पर पड़ी थी । उसे पहिनने का उसका इरादा नहीं था जब तक कि कोई आकस्मिक दुर्घटना न आ पड़े ।

इस समय वह अनेक प्रकार के विचारों में तल्लीन, धीरे-धीरे घनघोर जंगल के मध्य से चला जा रहा था ।

वह सोच रहा था—“उफ ! मेरे जीवन का अमूल्य व्रत अभी तक पूरा नहीं हुआ । मेरा अपमान करनेवाला शत्रु खंगबहादुर इस समय मेरे भाई का श्वसुर है । उससे किस प्रकार बदला ले सकता हूँ...और मेरे पिता का घातक तथा मेरा सारा राज्य हड़प कर स्वयं राजा बन बैठने वाला रसिकरसाल भी मेरे पंजे में आकर निकल भागा । अपनी साधित प्रेतात्मा को अपने प्रण के अनुसार अभी तक मैंने मनुष्य का खून नहीं पिलाया, अगर जल्दी नहीं करूँगा तो प्रेतात्मा रूठ कर मेरा ही रक्तपान करेगी । इस समय मैं घर-द्वार त्यागकर बीहड़ बन में आ गया हूँ, परन्तु मैंने अभी तक यह नहीं सोचा कि कहाँ जाऊँगा और क्या करूँगा...हाँ, रूप नगर की उस भयानक पीतल की मूर्ति ने एक बार मुझे बुलाया था और कहा था कि वह मुझे एक दूसरे ही देश को ले चलेगी । चलो उसी के पास । देखूँ, वह मुझे किस नये देश में ले जाती है ।”

निश्चय कर लेने पर विजय तेज चलने लगा । अर्धरात्रि की भयानक नीरवता में विजयसिंह निर्भीक होकर उस ओर बढ़ चला जिधर रूप नगर के खंडहरों के बीच में वह भयानक तिलस्मी मूर्ति अब भी अचल भाव से बैठी थी ।

उस स्थान पर आकर विजय कुछ सोचने लगा । अभी वह उस मूर्ति से लगभग पचीस गज की दूरी पर था ।

उसी समय उसके कानों में उसी ओर आते हुए दो आदमियों के जोर-जोर से बातें करने की आवाज आई । वह ठिठक कर खड़ा हो गया और विस्मित होकर एक घने वृक्ष की ओट में छिप गया ।

आने वाले वे दोनों आदमी पीतल की उस मूर्ति के पास आकर रुक गये ।

चन्द्रमा धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहा था इससे जंगल का अन्धकार बहुत कुछ कम हो गया था और विजय वहाँ का सारा दृश्य देख रहा था ।

विजय को महान आश्चर्य हुआ जब कि उसने उन दोनों आदमियों की आवाज सुनी ।

वह मन ही मन बोला—“हैं ! यह तो रसिकरसाल की आवाज है...और यह दूसरा कौन है ? अरे, यह तो खंगबहादुर है । ये दोनों मेरे प्राचीन शत्रु इस भयानक मूर्ति के पास क्यों आये ? अवश्य ही इस मूर्ति की बातों से इन दोनों को लालच पैदा हुई है और अब दोनों उस नये देश में जाकर रक्तमन्दिर के धन पर अधिकार करना चाहते हैं । इस मूर्ति की तो यह आदत ही है कि वह सभी से ऐसी बातें कहती है...परन्तु खंगबहादुर और रसिक में मेल कैसे हुआ ? खैर, देखें आगे क्या होता है ?”

उसी समय भयानक चीख से सारा जङ्गल गूँज उठा और आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से विजय ने देखा कि उस भयानक मूर्ति ने खंगबहादुर और रसिक को अपने वज्र सदृश्य हाथों द्वारा पकड़ लिया है और वे दोनों छूटने के लिये छुटपटा रहे हैं । विजय के देखते-देखते वह भीषण विकराल मूर्ति उन दोनों को निगल गई ।

साहसी विजय ने भय से अपनी आँखें बन्द कर लीं । मगर जब

दूसरे ही क्षण उसके नेत्र खुले तो उसने देखा कि वह मूर्ति शान्त भाव से बैठी है जैसे कुछ हुआ ही न हो ।

अब विजय सोचने लगा कि क्या यह पीतल की मूर्ति विश्वासघातिनी है ? क्या इसी प्रकार रास्ता चलते हुये आदिमियों को बुलाना तथा उन्हें पकड़ कर उदरस्थ कर जाना ही इस पैशाचिक मूर्ति का कार्य है ? तो क्या उसके साथ भी वह मूर्ति वही बर्ताव करेगी ? अवश्य करेगी, उसका विश्वास ही क्या ? तब वह किस प्रकार उस नये देश में जा सकेगा ?

वास्तव में विजयसिंह उस नये देश में जाकर रक्तमन्दिर का रहस्योद्घाटन करने के लिये अत्यन्त लालायित था ।

अन्त में विजय ने एक रास्ता सोच लिया । उसके बायें कंधे पर इस समय वनमानुषवाली तिलस्मी पोशाक पड़ी थी । वह जानता था कि कोई भी शक्ति उस पोशाक के पहिने रहने पर उसे हानि नहीं पहुँचा सकता, क्योंकि वह पोशाक करामाती थी और तिलस्मी सामानों में सबसे बहुमूल्य थी ।

अतः विजयसिंह ने वही पोशाक अपने ऊपर पहिन ली । पहिनते ही विजयसिंह की आकृति एक भयानक वनमानुष की शकल में बदल गई ।

अब धीरे-धीरे विजयसिंह वनमानुष की पोशाक पहिने उस मूर्ति की ओर बढ़ा ।

दूर से ही उसे देखकर वह मूर्ति चिल्ला उठी—“आओ, आओ मैं तुम्हें एक नये देश में ले चलूँगी, जहाँ सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है !”

विजय बोला—“लो, मैं आ गया । ले चलो मुझे उस देश में, लेकिन यह याद रहे कि मुझसे जरा भी विश्वासघात किया तुमने, तो अच्छा न होगा ।”

मूर्ति बोली—“नहीं जी नहीं, मैं किसी को धोखा देने क्यों जाऊँ ?
जुम आओ तो सही मेरे पास !”

विजय उसके पास चला गया ।

अरे बाप रे । गजब की फुर्ती से उस मूर्ति ने विजयसिंह को दबोच लिया और चाहा कि अन्य लोगों की तरह उसे भी निगल जाय कि उसी समय विजय की करामाती पोशाक से एक भीषण ज्वाला उत्पन्न हो गई ।



२

जिस समय उस भयानक मूर्ति ने रसिक को समूचा अपने पेट में भर लिया था, उस समय मारे भय तथा आशंका के रसिक चेतनाहीन सा हो गया । उसे बहुत देर तक अपने तन-बदन की सुध नहीं रही ।

थोड़ी देर बाद बदन में हवा के ठण्डे झोंके लगने के कारण उसके शरीर में मृदु-कम्पन हुआ और उसकी अचैतन्यता शीघ्र ही दूर हो गई । वह आँख मल कर उठ बैठा । उसके सर में इस समय बेहद चक्कर आ रहे थे, उसका दिमाग उड़ता हुआ सा प्रतीत हो रहा था, उसके नेत्र अभी देखने में पूर्णतया असमर्थ थे । धीरे-धीरे उसे सभी बातें याद आने लगी ।

उस भयानक मूर्ति की बात सोचते ही वह एक बार भय से पुनः काँप उठा । परन्तु उसे आश्चर्य तो इस बात पर हो रहा था कि वह यहाँ आया कैसे ? उसे तो अपने बचने की ज़रा भी आशा न थी, तो फिर

वह बच कैसे गया ? उसे तो इस समय उस मूर्ति के पेट में होना चाहिये था, परन्तु वह अपने को एक छोटी-सी कोठरी में पा रहा है ।

अरे ! एकाएक वह चौकन्ना हुआ, जब कि उसने अपने से थोड़ी ही दूर पर खड्गबहादुर को भी बेहोश पड़े देखा । उसके जी में जी आया । भला दोनों आदमी साथ-साथ तो हैं ! अब सोच समझ कर कोई युक्ति निकाल ही लेंगे ।

धीरे-धीरे खड्गबहादुर भी होश में आकर उठ बैठे और रसिक से बात-चीत करने लगे । वह एक छोटी-सी रौशनदार और हवादार कोठरी थी, जिसमें इस समय उन दोनों ने अपने को बेहोश पड़े पाया था । उसमें सामने की ओर खुले हुए एक दरवाजे के सिवा और कोई भी रास्ता बाहर जाने का दृष्टिगोचर नहीं होता था ।

रसिक बोला—“वलिये इस दरवाजे से बाहर चलकर देखा जाय कि उधर क्या है ? जहाँ तक मेरा ख्याल है कि अब भी हम लोग उस नये देश में चल सकते हैं । एक बार प्रयत्न करके देखना अवश्य चाहिये ।”

“हाँ-हाँ यही ठीक होगा—” खड्गबहादुर ने कहा ।

दोनों आदमी उस खुले दरवाजे से उस पार गये । उनके जाते ही दरवाजा अपने आप बन्द हो गया ।

रसिक ने कहा—“लीजिये अब उधर जाने का भी रास्ता बन्द हो गया, खैर, आइये आगे चलें ।”

एक बहुत लम्बी सुरंग थी, जिससे चलकर रसिक और खड्गबहादुर शीघ्र ही एक हरे-भरे उद्यान में पहुँच गये । उस उद्यान की शोभा देखकर दोनों आदमी अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

वहाँ पर फल-फूल बहुतायत से थे । स्वादिष्ट फलों से अपनी लुब्धा शान्त करने के बाद दोनों घूम-घूमकर उस उद्यान की सैर करने लगे ।

बड़ा ही मनोरम दृश्य था, उद्यान के दक्षिण कोने पर पत्थर के एक शेर की मूर्ति एक ऊँचे चबूतरे पर बनी हुई थी। उस चतुर कारीगर की प्रशंसा किये बिना हृदय नहीं मानता था, जिसने उस शेर की ऐसी सजीव मूर्ति बनाई थी।

सबसे अधिक कौतूहल रसिक को हुआ। वह उस शेर के पास चला गया। उसे देखकर वह शेर भयानक रूप से गरज उठा, मानो वह पत्थर का नहीं बल्कि असली शेर है! उसने अपनी लाल-लाल जीभ बाहर निकाल कर अपने होंठ चाटे, मानो उसने अपने सामने कोई बहुत ही स्वादिष्ट शिकार देखा हो।

शेर की तड़प सुनकर रसिकरसाल हृत्बुद्धि सा हो गया और डर कर पीछे भागने के बजाय लड़खड़ा कर शेर के आगे गिर पड़ा।

सामने आया शिकार कौन छोड़ता है? भयानक शेर ने झुक कर रसिक को अपने भयानक मुँह में पकड़ लिया।

रसिक को तब होश हुआ जब कि वह पूरी तौर से शेर के मुँह में आ गया था, खड़बहादुर दूर खड़े होकर हाथ मल रहे थे।



३

आखिर विजय को जो आशांका थी वह होकर ही रही। भयानक मूर्ति ने उसे पकड़ ही लिया, परन्तु पकड़ते ही उसके तिलस्मी पोशाक से एक भीषण ज्वाला उत्पन्न हो गई और उस भयानक मूर्ति ने चीख-कर उसे छोड़ दिया। तब वह विनती भरे स्वर में बोली—“अरे, तुम तो

विजयसिंह हो ! बताया क्यों नहीं ? मुझे क्षमा करो भाई ! मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था । आओ, वास्तव में मैं तुम्हारे ही लिये बैठाया गया हूँ । मैं जरूर तुम्हें चंग देश में ले चलूँगा ! आकर मेरी पालथी पर बैठ जाओ !”

विजय पशोपेश में पड़ गया ! उसे हिचकिचाता हुआ देखकर मूर्ति बोली—“तुम सोच क्या रहे हो ? अब मैं तुम्हारे साथ विश्वासघात करने का साहस नहीं कर सकती । तुम्हारे पास एक ऐसी वस्तु है जो पूर्णतः तुम्हारी रक्षा करेगी । अब तुम्हें डरने का कोई कारण नहीं !”

विजय निर्भयता पूर्वक उस मूर्ति की गोद में जाकर बैठ गया ।

“मुझे दोनों हाथों से कसकर पकड़ लो !” मूर्ति बोली ।

विजय ने वैसा ही किया । थोड़ी ही देर बाद उसने देखा कि वह चबूतरा जिस पर मूर्ति बैठी थी धीरे-धीरे अपनी जगह पर घूमने लगा । उसकी तेजी यहाँ तक बढ़ी कि यदि उसने उस मूर्ति को कसकर पकड़ा न होता तो तुरन्त दूर भटक दिया जाता और एक भी हड्डी पसली उसकी साबूत न बचती !

जोरों की धड़के की आवाज हुई और वह सारा चबूतरा जमीन के अंदर घुस गया । भटका और आवाज के कारण विजयसिंह बेहोश हो गया । कई मिनिट तक उसे होश नहीं रहा । जब वह चैतन्य हुआ तो उसने देखा कि वह अब भी उसी भयानक मूर्ति की गोद में बैठा है और वह मूर्ति भी उसी चबूतरे पर बैठी है, मगर वह चबूतरा इस समय तेजी के साथ रेलगाड़ी की तरह आगे को दौड़ा जा रहा था । मानो उसके नीचे पहिये लग गये हों । विजय ने चारों ओर दृष्टि फेंकी मगर अधिकार के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं पड़ा । हाँ, अनुमान से उसने यह अवश्य जान लिया कि वह चबूतरा इस समय किसी लंबी सकरी सुरंग में से होकर आगे की ओर तेजी से दौड़ा जा रहा था ।

शायद उसी अनजान देश की यह यात्रा थी । विजय अब भी उस

मूर्ति को कसकर पकड़े हुये था और वह मूर्ति भी एक दम शान्त बैठी थी।

वह चबूतरा—चबूतरा क्या था गाड़ी थी क्योंकि नीचे से पहियों की घरघराहट सुनाई पड़ रही थी। न जाने कब तक यह चबूतरानुमा गाड़ी हवा की तेजी के साथ आगे की ओर दौड़ती रही और मूर्ति और विजय चुपचाप बैठे रहे। लगभग दस घण्टे के बाद एकएक उसकी तेजी घटने लगी, साथ ही उस श्रंखकारमयी सुरंग में सामने की ओर कुछ रोशनी-सी दिखाई पड़ी।

कुछ ही देर बाद एक हरे-भरे बाग में आकर वह चबूतरा रुक गया। विजय बैठा ही रहा। उसने सोचा अब मूर्ति जरूर कुछ बोलेगी, परन्तु कई मिनट बीत जाने पर भी वह चुपचाप बैठी रही। केवल एक बार उसके दाहिने हाथ में कम्पन हुआ और विजय ने देखा कि मूर्ति की दाहिनी हथेली खुल गई, जिस पर कुछ लिखा हुआ है। उसने पढ़ा। यों लिखा था—

“यह पहला पड़ाव है। यहाँ रुककर विश्राम कर लो !”

अब विजय चबूतरे पर से उतर पड़ा। पहिली नजर उसकी उस विचित्र चबूतरे पर पड़ी जो उसे उस अनजानी जगह में घसीट लाया था। वह चबूतरा एक छोटी-सी गाड़ी के रूप में था और उसमें रेलगाड़ी के से छोटे-छोटे पहिये लगे थे। जमीन पर दूर तक पतली लाइनें बिछाई हुई दिखलाई पड़ रही थीं। मालूम होता था कि उन्हीं पर से वह गाड़ी दौड़ती आई थी।

अनुमान लगाकर विजय ने जाना कि इस दस घण्टे की यात्रा में वह लगभग छः सौ मील आ चुका है, क्योंकि उस गाड़ी की रफ्तार सठ मील प्रति घंटे से कम न थी। विजय टहलता-टहलता दूर निकल गया और इधर से उधर घूमने लगा। उस बाग में जगह-जगह पर सुन्दर फूल खिले हुए थे। बीच में एक सुसज्जित बँगला भी दिखाई दे रहा था।

बँगले के पास ही एक खुशनुमा छोटा-सा तालाब था जिसमें रंग-बिरंगी मछलियाँ तैर रही थीं ।

उस उद्यान की सुन्दर सजावट देख विजय हैरान था । उसे स्वप्न में भी विश्वास न था कि मानवीय नेत्र से दूर भूगर्भ में इतना बृहत् उद्यान होगा । विजय ने उद्यान में से अच्छे-अच्छे फल तोड़कर अपनी जुवा शांत की और बँगले में जाकर विश्राम करने लगा । वहाँ पर आराम की सभी आवश्यक चीजें उपस्थित थीं ।

विजय कुछ देर तक सोता रहा । आधी रात बीत गई थी, जब कि किसी घण्टे की तेज आवाज सुनकर उसकी नींद खुल गई । उसने सुना, कोई बड़ा-सा घण्टा अपनी कर्कश आवाज में 'टन-टन' बोल रहा था ।

विजय घबड़ा गया । वह जानता था कि यह तिलस्मी स्थान है जहाँ पर पग-पग पर खतरा है । वह उठकर उसी ओर को दौड़ा जिधर से घण्टे की आवाज आ रही थी ।



४

शेर के भयानक जवड़ों में दबा हुआ रसिक छुटपटा रहा था । उस तिलस्मी शेर से छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं था । खंगबहादुर दूर खड़े हुए हाथ मल रहे थे । रसिक ने भयावुर एवं दीन वाणी में खंगबहादुर से सहायता की प्रार्थना की ।

खंगबहादुर भी जानते थे कि कुछ ही देर में उनका साथी भारी

विराजि में पड़ जायगा, अतः वे शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े और उस चबूतरे को ध्यान से देखने लगे, जिस पर वह शेर बैठा हुआ था ।

चबूतरे की बायीं ओर यह लिखावट महीन अक्षरों में लिखी थी—

“अगर तुम उस भयानक देश में जाना चाहते हो तो इस शेर की मूर्ति को पीछे की ओर धक्का दो । इसके मुख से तुम्हें एक नायाब चीज़ मिलेगी, जो तुम्हें उस नये देश तक पहुँचने में बड़ी मदद देगी ।”

इसे पढ़ते ही खंगब्रहादुर तुरन्त उस शेर के पीछे जा खड़े हुए और अपने पैरों से उन्होंने उसे तीव्र धक्का दिया, फिर तुरन्त पीछे हट गये । पीछे न हटे होते तो उसका परिणाम अत्यन्त भयंकर होता, क्योंकि पैरों की चोट खाते ही वह शेर प्रबल वेग से गरजा और रसिक को छोड़ खंगब्रहादुर को पकड़ने के लिये पीछे घूम पड़ा ।

परन्तु खंगब्रहादुर तो पहले ही हट चुके थे और रसिक भी छूटते ही दूर जा खड़ा हुआ । वह शेर थोड़ी देर तक भयंकर रू से गुराता रहा, फिर उसने अपनी गर्दन नीची की ।

उसी समय उसके मुख से कोई चमकती हुई वस्तु निकल कर भूमि पर गिर पड़ी और उस शेर का गुराना शान्त हो गया । जो वस्तु उस शेर के मुख से निकली थी वह चाँदी का बना एक चमचमाता छोटा-सा डब्बा था । रसिक ने सावधानी से आगे बढ़कर उसे उठा लिया ।

थोड़े ही परिश्रम के पश्चात् रसिक ने उसे खोल डाला । उसके भीतर सुनहरे अक्षरों में लिखी हुई एक छोटी-सी पुस्तक निकली । दोनों व्यक्ति ध्यानपूर्वक उस अमूल्य पुस्तक का अवलोकन करने लगे—

पहले पृष्ठ पर यह लिखा था—“जहाँ सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है, उस चंगदेश में जाने का सरल-उपाय ।”

दूसरा पृष्ठ खोलने पर यह नोट लिखा था—“खबरदार ! यदि

तुममें साहस की कमी हो, तो चंगदेश न जान का इरादा छोड़ दो, क्योंकि उस भयानक देश में अनेक प्रकार की विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। ज़रा सी असावधानी प्राण तक ले सकती है। चंगदेश में जाने का मार्ग अत्यन्त कष्टप्रद एवं भयानक है। पग-पग पर प्राण-संकट उपस्थित होगा। उस देश में पहुँचने का सबसे सरल रास्ता, (यद्यपि वह भी कुछ कम खतरनाक नहीं) वह पीतल की मूर्ति है। वह तुम्हें अपनी गोद में बिठाकर उस देश तक पहुँचा देगी। मगर जिसे वह मूर्ति निगल जायगी, उसके लिये वह रास्ता बन्द हो जायगा। तब केवल एक मार्ग रह जायगा, जो भयानक भूखण्ड के बीच से गुजरता है।....’

इसके पश्चात् बड़ी देर तक दोनों उस पुस्तक को उलट-पुलटकर पढ़ते रहे। फिर खंगवहादुर बोले—“उस देश में चलना तो अवश्य चाहिये। विपत्तियाँ तो जीवन में आती ही रहती हैं...”

“मगर आपने विपत्तियों की ओर शायद पूर्ण ध्यान नहीं दिया” रसिक बोला—“इस पुस्तक में लिखा है कि आगे चलने पर हमें एक नदी द्वारा १५ दिन तक यात्रा करनी होगी, तब हम उस विकराल जंगल के किनारे पहुँचेंगे, जिसमें शेर, चीते, भालू, हाथी, गैंड़े आदि भयंकर जन्तु रहते हैं और नाना प्रकार के साँप-बिच्छू-गोजर तथा अन्य हिंसक कीड़े मकोड़े-जीव-जन्तु बहुतायत से पाये जाते हैं, जिनसे मनुष्य की जान बचना अत्यन्त ही दुर्लभ है। अगर हम परमात्मा की कृपा से वह ५० कोस का जंगल पारकर सकें तो हम चंगदेश की सीमा पर पहुँच जायेंगे। मान लीजिये कि हम किसी प्रकार उस देश तक जा पहुँचे, तो वहाँ के निवासी हमें जीवित न छोड़ेंगे और अवश्य ही हमें ‘रक्तमन्दिर’ में ले जाकर बलि दे देंगे—अब बो लिये क्या विचार है ?”

“आप क्षत्री होकर डर रहे हैं ?”—खंगवहादुर बोले।

“जी नहीं श्रीमान् ! मैं डरता नहीं। अगर आप की ऐसी ही धारणा

है तो मैं चलने को तैयार हूँ, चाहे प्राण भले ही चले जाँय । आइये— अब उस दरवाजे को खोजा जाय जो हमें उस नदी के किनारे तक पहुँचावेगा ।”

दोनों आदमी अत्यन्त मनोयोगपूर्वक उस बाग की छान-बीन करने लगे, परन्तु दरवाजे की सूरत जल्द न दिखलाई पड़ी । इसी छान-बीन में उन दोनों को एक कुल्हाड़ी तथा कई एक अन्य आवश्यक औजार भी मिल गये, जिसे उन्होंने आवश्यक समझकर अपने साथ रख लिया । बहुत परिश्रम के बाद बाग के एक कोने में मिट्टी के नीचे दबा हुआ हुआ एक सुरंग का दरवाजा उन्हें मिला ।

दोनों आदमियों ने एक फर्से की मदद से, जो उन्हें उसी बाग में मिला था, थोड़ी ही देर में वह दरवाजा साफ कर डाला । खुशी-खुशी अपने आवश्यक सामान लेकर वे लोग उस दरवाजे की राह नीचे उतरे । नीचे उतरने के लिये पतली-पतली सीढ़ियाँ बनी हुई थीं ।

एकदम नीचे उतर जाने पर एक सुरंग मिली जो अपने उदर में घना अन्धकार धारण किये हुए बहुत दूर तक चली गई थी । अंधकार में चलते-चलते दोनों का जी ऊबने लगा, परन्तु उन्होंने साहस न खोया । लगातार आगे बढ़ते ही गये । लगभग ५ घण्टे तक वे लोग उस अन्धेरी सुरंग में चलते रहे । यही गनीमत थी कि वह सुरंग एकदम सीधी तथा चिकनी बनी हुई थी—जरा भी कहीं ऊँची-नीची न थी, इसीलिये सिवा अंधकार की घोर कालिमा के और किसी वस्तु ने उन्हें कष्ट नहीं पहुँचाया ।

एक पहाड़ की तराई में आकर उस सुरंग का स्वात्मा हुआ और दोनों ने अपने सामने एक ऊबड़-खाबड़ उपत्यका देखी, जिसके मध्य से एक तेज बहनेवाली पतली नदी बल खाती हुई बही जा रही थी । और दूर-दूर तक, जहाँ नज़र जाती थी, हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ रही थी ।

वह एक विस्तृत मैदान था। पीछे की ओर पहाड़ था, जिसमें एक गुफा भी दिखाई पड़ रही थी—उसी गुफा में से अभी-अभी ये दोनों निकले थे।

दोनों ने नदी के किनारे आकर पेट भर पानी पिया।

यह वही नदी थी, जिसके विषय में उस तिलस्मी पुस्तक में लिखा था और जिसकी राह से उन दोनों को १५ दिन की यात्रा करनी थी। वह जगह बड़ी सुनसान थी। मनुष्य को कौन कहे, पशु पक्षियों की भी सूत मुश्किल से नजर आती थी।

अब प्रश्न यह हुआ कि बिना किसी नाव के किस प्रकार नदी का रास्ता तय किया जायगा।

रसिक ने कहा—“अब हमें एक नाव की आवश्यकता है, परन्तु ऐसे बीहड़ स्थान में नाव का मिलना दुर्लभ ही नहीं, असम्भव है। अच्छा हो कि हम लोग इस नदी के किनारे-किनारे आगे बढ़ें, इस प्रकार हमें नाव की जरूरत ही न पड़ेगी।”

खंग—“आप का कहना ठीक है, मगर एक बात पर शायद आपने ध्यान नहीं दिया। उस पुस्तक में यह साफ लिखा है कि किसी नाव पर यात्रा करो शायद इसमें भी कोई गूढ़ रहस्य हो। ज़मीन पर चलने से शायद कोई बहुत गहरी विपत्ति आ सकती हो—नहीं तो पुस्तक में यह न लिखा होता कि सिर्फ नाव से यात्रा करो या पानी के मार्ग से आगे बढ़ो।”

रसिक०—“तो आप की राय यह है कि स्थल मार्ग से आगे बढ़ने पर हमें किसी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा?”

खंग०—“जी हाँ! मेरा ऐसा ही विश्वास है...हमारे पास कुल्हाड़े हैं। इनकी सहायता से हम सरलतापूर्वक कोई मोटा वृक्ष काटकर उससे तने से एक अच्छी नाव बना सकते हैं। इस कार्य में अधिक से अधिक एक सप्ताह लगेगा।”

रसिक०—ओह ! आपने बहुत दूर की सोची । जरूर यही करना चाहिये ।”

बस फिर क्या था, दोनों आदमी जी जान से काम में लग गये । ७ घण्टे के अनवरत परिश्रम से दोनों ने एक मोटा वृक्ष काट डाला । इसके बाद सन्ध्या का आगमन देखकर दोनों ने रात काटने के लिये वृक्ष की टहनियों से एक छोटा-सा भोपड़ा बनाया । जंगल के फल-मूल खाकर वे दोनों रात्रिकाल में उसी भोपड़े में सोये ।

इस प्रकार लंगभग १० दिनों में उन दोनों ने एक छोटी-सी मजबूत नाव बना ली । ग्यारहवें दिन वह नाव नदी की धार में छोड़ दी गई ।

रसिक शरीर से मजबूत था, अतः डाँड़ उसी ने पकड़ी । दक्षिण दिशा की ओर धीरे-धीरे नाव बढ़ चली । पहले दिन प्रातःकाल से लेकर सन्ध्या तक नाव बराबर चली गई । कोई नई बात न दिखाई पड़ी । नदी के दोनों किनारों पर अच्छे-अच्छे फलों के वृक्ष लगे थे ।

शाम को नाव किनारे लगा दी गई और रसिक कुछ फल तोड़ लाया, जिससे दोनों ने अपनी लुधा शान्त की । चाँदनी रात थी, अतः रात में भी नाव को चलाना निश्चय हुआ ।

इस प्रकार पाँच दिनों तक उस नदी में बराबर नाव चली गई ।

इस बीच में कोई नई घटना नहीं घटी । एक परिवर्तन अवश्य दृष्टि-गोचर हुआ था, वह यह कि अब नदी के दोनों किनारों पर घना जङ्गल मिलने लगा था, जो देखने में बहुत भयंकर लगता था ।

अपनी इस जल-यात्रा के छठवें दिन रात्रि के आठ बजे रसिक ने अपनी नाव किनारे लगाई । उस समय चन्द्रमा की रोशनी से सारा जङ्गल सफेद हो गया था । फिर भी सुनसान जङ्गल भाँय-भाँय कर रहा था । ऐसा लगता था मानो वहाँ पर भयंकर पिशाचों का निवास हो । कभी-कभी पास के जङ्गल से किसी विचित्र जन्तु के बोलने की एक तीव्र आवाज आ जाती

थी। यहाँ आते ही न जाने क्यों दोनों सहम से गये, फिर भी फल की खोज में उन्हें नदी तट पर उतरना ही पड़ा।

रसिक नाव के पास ही तट पर खड़ा रहा और खड्गबहादुर कुछ दूर आगे बढ़कर एक वृक्ष से कुछ फल तोड़ने लगे।

एकाएक किसी प्रकार की अद्भुत सरसराहट और रोयें बोलने की आवाज हुई—जिसे खड्गबहादुर ने तो नहीं, मगर रसिक ने बखूबी सुन लिया। उसे किसी खतरे का अनुमान हुआ। वह भयभीत दृष्टि से अपने चारों ओर देखने लगा। उसे एक भयानक दृश्य दिखाई पड़ा। ठीक उस जगह, जहाँ इस समय खड्गबहादुर खड़े हुए फल तोड़ रहे थे। एक बड़ी-सी फणस की चट्टान थी। उसकी आड़ से एक बहुत ही भयानक, बड़ा-सा काला सिर बाहर निकला हुआ था, और दो प्रज्वलित आँखें उन दोनों की ओर देख रही थीं।

वह न जाने क्या था—न जाने कौन था? भूत था, प्रेत था, पिशाच था या क्या था? रसिक कुछ भी अनुमान न लगा सका। फिर भी वह समझ गया कि अवश्य ही उस चट्टान के पीछे कोई भयङ्कर जीव उपस्थित है और शीघ्र ही उन दोनों पर कोई गहरी विपत्ति आया चाहती है। सबसे अधिक भय तो खड्गबहादुर के लिये था, क्योंकि वे ही उस चट्टान के एकदम निकट थे और उन्हें अभी तक किसी भी विपत्ति की आशंका न थी।

उस भयानक सर ने चट्टान के पीछे से उचककर एक बार फिर उन दोनों की ओर देखा। फिर रसिक ने देखा कि वह भयानक जन्तु उस चट्टान के पीछे से निकल कर खड्गबहादुर की ओर बढ़ा। वह जन्तु मनुष्य के आकार का था, परन्तु मनुष्य के आकार से बहुत ऊँचा तथा मोटा था। उसका शरीर एकदम काला था और उस पर बहुत लम्बे-लम्बे बाल थे। सर बहुत भारी था। पूरा दानव लग रहा था वह।

वह दानव धीरे-धीरे खड्गबहादुर की ओर बढ़ रहा था। खड्गबहादुर

तो निश्चिन्त थे । उन्हें पता भी न था कि मौत उनके सर पर आया ही चाहती है ।

रसिक काँप उठा । वह अपने नाव की ओर दौड़ा और जाकर कुछ खोजने लगा । वह अपना तमंचा खोज रहा था । तमंचा लेकर वह नाव पर खड़ा हो गया तनकर ।

उसने देखा कि अब यदि वह साहस से काम नहीं लेता, तो जरूर वह दानव खंगबहादुर की जान ले लेगा और तब वह उस जङ्गल में अकेला रह जायगा । खंगबहादुर कुछ फल तोड़कर अभी घूमे ही थे कि उन्होंने उस विकराल दानव को देखा । उनके मुख से बेतहाशा चीख निकल पड़ी । उस दानव ने आगे बढ़कर खंगबहादुर को खिलौने सा पीठ पर लाद लिया और सामने जङ्गल की ओर दौड़ चला । रसिक की आँखों के सामने अंधेरा छा गया ।

धाय !...धाय !...तमंचे की गरजती हुई आवाज से जङ्गल गूँज उठा । रसिक की गोली सीधे जाकर उस दानव के पैर में लगी थी । गोली लगते ही वह दानव प्रबल वेग से लड़खड़ाया और उसके मुख से जोरों की चिम्घाड़ निकली, परन्तु वह रुका नहीं । वह खंगबहादुर को पीठ पर लादे लड़खड़ाता हुआ जङ्गल की ओर दौड़ता ही गया । अब रसिक ने परिस्थिति की दिकटता का अनुमान किया । वह समझ गया कि अब बिना जान पर खेले वह खंगबहादुर को नहीं बचा सकता । वह सोचने लगा कि इन्हीं सब खतरों के कारण उस पुस्तक में नाव से यात्रा करने को लिखा था ।

रसिक ने दूसरा तमंचा लेकर अपनी कमर में खोसा और अपना तमंचा मजबूती से हाथ में पकड़े नाव से नीचे उतरा और दौड़ता हुआ उस ओर बढ़ा, जिधर वह दानव गया था । खंगबहादुर के चीखने-चिल्लाने की आवाज़ अब तक आ रही थी । कुछ दूर जाकर रसिक ने देखा कि एक स्थान पर मैदान में उसी प्रकार के बीस दानव एकत्रित

हैं और वह घायल दानव खंगबहादुर को लिये हुए उन्हीं के मध्य में जा गिरा है। खंगबहादुर को दो नये दानवों ने पकड़ लिया। और बाकी दानवों ने उस घायल दानव की सेवा करनी शुरू कर दी। रसिक दूर से यह सब देख रहा था। इस समय अगर वह समझ-बूझकर कार्य नहीं करता तो स्वयं उसकी भी जान जाने का भय था! कुशल थी कि अभी तक दानवों ने उसे नहीं देखा था।

रसिक धीरे-धीरे पेड़ों की आड़ देता हुआ उस ओर बढ़ा जिधर वे दोनों दानव खंगबहादुर को पकड़े हुए खड़े थे।

एकाएक खंगबहादुर की दृष्टि रसिक पर पड़ गई! उन्हें कुछ ढाड़स हुआ जब कि रसिक ने उन्हें तमंचा दिखाया। आगे बढ़ते-बढ़ते जब रसिक बहुत पास पहुँच गया, तो उसने खंगबहादुर को इशारा करके अपनी कमर का तमंचा निकाला और उसे धीरे से उनकी ओर फेंक दिया। खंगबहादुर ने उसे लोक लिया।

उसी समय पुनः धौंय-धौंय की आवाज हुई और रसिक की चलाई हुई गोली से वे दोनों दानव, जो खंगबहादुर को पकड़े हुए थे, ज़मीन पर लोटते नजर आये। अब खंगबहादुर भी स्वतन्त्र थे और उनके हाथों में तमंचा था। वे आगे बढ़कर रसिक से जा मिले। दानवों में खलवली मच गई और सब उस घायल दानव की व्यवस्था छोड़कर इन दोनों पर पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े लेकर दूट पड़े। खंगबहादुर ने गोली चलाई और सामने के दो दानव गिरते हुए नजर आये। रसिक की गोली ने भी एक दानव को यमलोक पहुँचाया। उस भीषण अस्त्र की करामात देखते ही दानव टिठक गये और तब पेड़ों की ओट में होकर इन पर पत्थर फेंकने लगे। रसिक और खंगबहादुर गोलियाँ चलाते हुए नदी की ओर लौटने लगे। दानव दल भी उनका पीछा करने लगा, परन्तु अब उन सभी को पास आने का साहस न होता था।

धीरे-धीरे नदी के किनारे दोनों पहुँच गये, तो क्या देखते हैं कि

वहाँ भी चार दानव उपस्थित हैं। बड़ी कठिन समस्या आ गई। अन्त में यह तय हुआ कि रसिक पीछा करते हुए दानवों को रोके और खंगवहादुर नदी तट पर के दानवों को तितर-बितर करें।

वही हुआ। खंगवहादुर के दो गोली चलाते ही, नदी तट के दानव भाग खड़े हुए। अब दोनों नदी के किनारे पहुँच गये, परन्तु एकाएक वे सन्न रह गये, यह देखकर कि उनकी नाव वहाँ नहीं है। यह नई आफत उनके सिर पर आ गई। उन्होंने देखा कि कोई उनके नाव खींचता हुआ बीच धारा में ले गया है। इनके होश उड़ गये। अब नाव का मिलना मुश्किल था।

इनकी नाव इस समय नदी की बीच धारा में लहरों के थपेड़े खा रही थी। इधर पीछा करने वाले दानव सर पर आ पहुँचे थे और पहाड़ी चट्टानों की ओट में छिपे हुए इन दोनों की ओर बड़े-बड़े पत्थर फेंक रहे थे। एक पत्थर तो रसिक के पैर में लगा था कि उसका चल सकना भी असम्भव था।



५

आधी रात में लगातार बजते हुए उस कर्कश घण्टे की आवाज सुन कर विजय बेतहाशा उस ओर दौड़ा जिधर चबूतरेवाली गाड़ी पर वह भयानक पीतल की मूर्ति बैठी हुई थी। वहाँ पहुँचते ही उसने देखा कि पीतल की उस भयानक मूर्ति ने अपना विकराल मुख खोल दिया है और घण्टे की आवाज उसी के मुख से निकल रही है। विजय पहले तो

ठिठका, फिर साहस करके मूर्ति की गोदी में जा बैठा। गोदी में बैठते ही घण्टे का बजना एकदम बन्द हो गया और तुरन्त ही वह चबूतरेवाली गाड़ी तेजी से सामने की ओर भाग चली घड़-घड़ करती हुई। विजय ने दो एक प्रश्न उस मूर्ति से पूछे, मगर वह मूर्ति एकदम निर्जीव की तरह पड़ी रही। गाड़ी बराबर पूरी तेजी के साथ चली जा रही थी। रात्रि के कारण चारों ओर अँधेरा था, अतः दिखाई नहीं पड़ता था कि आस-पास क्या है।

इस तरह लगातार १५ घण्टों तक चलने के पश्चात् एक जगह गाड़ी फिर रुकी। इस बार विजय ने पुनः अपने को एक हरे-भरे उद्यान में पाया। यह पहले वाले उद्यान से भी बड़कर था। विजय ने मूर्ति के हाथ पर यह लिखा देखा—

यह दूसरा पड़ाव है। यहाँ केवल दो घण्टे विश्राम कर सकते हो। इसके बाद का रास्ता बड़ा ही कष्टप्रद है। होशियार होकर रहना। मूर्ति से एक क्षण के लिये भी अलग न होना।

विजय ने गाड़ी पर से उतर कर झटपट नित्य क्रिया से छुट्टी पाई तत्पश्चात् स्नान करके कपड़े सुखाये। अब तक वह बराबर वनमानुष की पोशाक अपने बदन पर पहने था। दो घण्टे के बाद विजय पुनः मूर्ति के पास आया और उसकी विकट यात्रा शुरू हो गई।

सन्ध्या हो गई थी और विचित्र रूप से भयंकर घड़-घड़ शब्द करती हुई वह गाड़ी अँधेरे में से चली जा रही थी। एक घण्टे के बाद विजय के शरीर में गर्मी मालूम देने लगी। उसे ऐसा लगा, मानों पास ही कहीं आग धधक रही हो। ज्यों-ज्यों गाड़ी आगे बढ़ने लगी, त्यों-त्यों आस-पास की गर्मी बढ़ने लगी, मगर आग की कहीं सूरत भी दिखाई न दी।

विजय की तन्त्रियत बेचैन होने लगी और एक घण्टे बाद ही उसने देखा कि पोतल की उस मूर्ति का बदन भी गर्मी की ज्वाला से गर्म हो उठा है। विजय को उस मूर्ति से लिपटे रहना असह्य हो उठा। मगर

वह मूर्ति को छोड़ भी नहीं सकता था, क्योंकि गाड़ी बहुत तेज जा रही थी, और वह अगर मूर्ति को छोड़ देता, तो न जाने कहाँ भटक दिया जाता। लाचार गर्मी सहन करता हुआ विजय बैठा ही रहा। बनमानुष की पोशाक इस समय भी उसके बदन पर थी और तब उसने समझा कि वहाँ की गर्मी इतनी तेज है कि अगर वह पोशाक न पहने होता तो जलकर कोयला हो जाता।

अब विजयसिंह के लिये गर्मी का बरदाश्त करना असम्भव हो गया। उसे ऐसा लगा कि मानो असह्य ताप से वह अभी-अभी जल कर राख हो जायगा। वह बेहोश हो गया और जान ही न सका कि उसका बाकी रास्ता कैसे कटा। जब विजय की बेहोशी दूर हुई तो उसने अपने शरीर पर ठण्डी हवा का अनुभव किया। उसने अपनी आँखें खोलीं-तो देखा कि गाड़ी एक हरे-भरे उद्यान में खड़ी थी। यह तीसरा और अन्तिम पड़ाव था।

एकाएक विजय चौंक पड़ा, जब कि उसने पीतल की मूर्ति की ओर देखा! उसने देखा कि सोने-सी चमकती हुई वह पीतल की मूर्ति इस समय एकदम काली पड़ गई थी और ऐसा लगता था मानो कोयले का कोई ढेर पड़ा हो। अब विजय ने समझा कि रास्ते की गर्मी इतनी ज्यादा थी कि यह पीतल की मूर्ति भी काली पड़ गई, परन्तु आश्चर्य की बात थी कि स्वयं वह कैसे बच सका—शायद उसी तिलस्मी पोशाक के कारण। लगभग दस घण्टे तक विजय उस उद्यान में रहा! इसके बाद उसकी यात्रा पुनः प्रारम्भ हो गई!

इस बार की यात्रा पिछली यात्रा जैसी कष्टप्रद नहीं थी, वरन् अतीव सुखप्रद थी। अब गाड़ी सुरंग में से नहीं चल रही थी, वरन् किसी हरे-भरे खुले हुए भूखण्ड के मध्य से होकर जा रही थी।

चारों ओर का दृश्य अत्यन्त मनोहारी था। ठण्डी हवा के झोंके कह रहे थे कि यह स्थान छोड़कर कहीं न जाओ।

गाड़ी अपनी पूरी रफ्तार से जा रही थी और दस ही घण्टे की यात्रा के बाद वह पुनः एक सुरंग में घुसी।

यह सुरंग बहुत ही लम्बी-चौड़ी तथा हवादार थी। रोशनी भी वहाँ काफी थी। एक घण्टे बाद वह रोशनी फीकी पड़कर लुप्त हो गई। विजय ने अनुमान लगाया कि अब संध्या हो गई है।

अब तक, जब से यह यात्रा शुरू हुई थी, वह पीतल की मूर्ति एकदम चुप थी। परन्तु अब बोली—“देखो मित्र ! अब हम चंगदेश में से होकर चल रहे हैं। थोड़ी ही देर में हम लोग ‘रक्तमन्दिर’ नामक भयानक स्थान में पहुँच जायेंगे। वहाँ पहुँचकर मेरा कार्य समाप्त हो जायगा और तब तुम जानो, और तुम्हारा काम जाने। परन्तु देखना, तुम विदेशी हो, यहाँ के निवासी विदेशियों के साथ प्राणघातक दुर्व्यवहार करते हैं।” इतना कहकर वह मूर्ति चुप हो गई।

लगभग घण्टे भर बाद सामने की ओर से तीव्र रोशनी की झलक आई और विजय समझ गया कि अब वह ‘रक्तमन्दिर’ के पास पहुँच गया है। एक बड़े से कमरे में जाकर वह गाड़ी रुक गई और विजय के उतरते ही न जाने कहाँ जाकर लुप्त हो गई।

अब विजय उस जगमगाते हुए कमरे में अकेला रह गया।

इस समय खूब सन्नाटा था, कहीं से कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। विजय आश्चर्यचकित नेत्रों से उस कमरे को देखता रह गया। जिधर ही उसकी दृष्टि जा रही थी, उधर ही उसे नवीनता दृष्टिगोचर हो रही थी। वह एक बहुत बड़ा कमरा था, जिसकी दीवारें, छत तथा ज़मीन सभी ठोस सोने की थीं।

दरवाजों में मणिमाणिक्य जड़े हुये थे। जगह-खगह दीवारों में भी जवाहिरातों द्वारा चित्रकारी की गई थी। दक्षिण ओर एक ऊँचे चबूतरे पर एक महाकाल के मुख की मूर्ति थी, वह भी सोने की थी। वह मूर्ति बड़ी भयंकर थी। उसका मुँह खुला था और रक्तवर्ण जीभ दिखाई पड़

रही। उसके गले का छेद ऐसा था कि उसमें एक आदमी खड़े-खड़े ही समा जा सकता था।

उस महाकाल के मुख की मूर्ति के अगल-बगल जवाहिरातों के दो भयानक शेर दोनों बगल बने हुए थे और शेरों के बीच में तथा उस मूर्ति के सामने दो मानवी मूर्तियों के सर बनाये गये थे। मालूम होता था, जैसे किसी ने उन दोनों सरो को अभी-अभी वहाँ काटकर ला रखा हो। एक सर तो एक अघेड़ उम्र के किसी राजा का था, जो अपने सर पर मुक्ता का मुकुट पहने था। और दूसरा सिर उसकी बेटी का लगता था—उसके सर पर भी राजकीय परिधान थे। वास्तव में वे दोनों सर बनावटी थे, परन्तु कलाकार की अद्भुत कार्यदक्षता व्यक्त कर रहे थे।

उसके बाद दो सीढ़ियाँ थीं, सोने की। उनके ऊपर हीरा मोती तथा अन्य जवाहिरातों से जमीन पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था 'रक्तमन्दिर' वे अक्षर इतने चमकदार थे कि उनमें से एक प्रकार की बहुत तेज़ रोशनी निकल रही थी। यही वह रोशनी थी, जिससे वह बड़ा सा कमरा जगमगा रहा था।

विजय डर गया। तो क्या यही वह भयानक 'रक्तमन्दिर' है, जिसके विषय में वह अपने यहाँ सुन चुका था।

वह न जाने कब तक वहाँ खड़ा रहता, अगर बाहर कहीं से किसी स्त्री के चिल्लाने की आवाज न सुनाई पड़ती।

उस चीख को सुनकर वह चौंक पड़ा। अब उसे ज्ञात हुआ कि वह एक ऐसे स्थान पर है, जहाँ कदम-कदम पर खतरा आ सकता है। उसने झटपट अपनी 'बनमानुष' की पोशाक उतार कर एक कपड़े में लपेट कंधे पर रख ली। इसके बाद वह धीरे-धीरे बाहर की ओर बढ़ा।

प्रवेशद्वार खुला था और वह सहज ही में उसी राह से बाहर हो गया। परन्तु बाहर ही विजय ने कुछ विचित्र मनुष्यों को सोते देखा जो आकार-प्रकार, रूप-रंग में बहुत विचित्र थे। शायद वे वहाँ के पहरेदार

थे। यद्यपि वे भी मनुष्यों की हर तरह थे, परन्तु उनके शरीर का रंग एकदम गेरू सा लाल था। उनके हाथ पैर भी बेडौल थे। नाकें चिपटी थीं।

आहिस्ते से विजय आगे बढ़ा, ताकि वे पहरेदार जाग न पड़ें। परन्तु विजय के लाख सावधान रहने पर भी वे जाग ही पड़े और चोर-चोर करते हुए विजय के पीछे दौड़े। विजय सामने की ओर भाग चला।

‘रक्तमन्दिर’ की विशाल अट्टालिका एक भारी उद्यान के बीच में बनी थी, वहाँ छिपने के लिये बहुत स्थान थे। विजय वहीं एक झुरमुट में जाकर छिप गया। पहरेदार अब तक चोर-चोर करते हुए उसे खोज रहे थे। विजय दम साधे पड़ा था।

एकाएक पुनः वैसी ही चीख की आवाज आई, जैसी कि ‘रक्तमन्दिर’ में उसने सुनी थी। मालूम होता था कि कोई युवती किसी संकट में पड़कर चीख रही हो। चीख की आवाज कहीं पास ही से आ रही थी।

विजय आवाज की सीध पर जा पहुँचा। उसने देखा कि एक हड्डा-कट्टा मनुष्य एक युवती को पकड़े हुए है और उस पर बलात्कार करना ही चाहता है।

वह पुरुष यद्यपि उस देश के मनुष्यों जैसा ही कुरूप था, फिर भी उसके शरीर पर फौजी वस्त्र थे। वह सेनापति-सा लग रहा था। और वह युवती राजकन्या सी दिखाई दे रही थी। इस नये देश में आकर विजय ने यह पहली ही स्त्री मूर्ति देखी। और समझ गया कि चाहे इस नये देश के पुरुष कुरूप ही क्यों न हों, परन्तु यहाँ की स्त्रियाँ अत्यन्त कोमलाङ्गी तथा रूपवती हैं। उस युवती की सूरत देखते ही विजय पहचान गया कि यह तो वही राजकन्या है जिसकी मूर्ति अभी-अभी वह ‘रक्तमन्दिर’ में देखता आ रहा है।

वह पुरुष कह रहा था—“तुम मुझसे बचकर नहीं जा सकतीं राज-

कुमारी नीरा ! एक न एक दिन अवश्य ही जवानी से भरी हुई तुम्हारी यह देह मेरी गोद में खेलेगी । आओ आज इस नीरव रजनो में हम तुम यौवन का सुखद आनन्द लूटें ।”

राजकुमारी—“दूर हो सेनापति व्योम ! तुम कामी हो, व्यभिचारी हो ! तुमने अब तक कितनी ही युवतियों के सुहाग लूटे हैं !”

व्योम—“भूलती हो राजकुमारी ! मैं इस देश का सबसे बड़ा वीर हूँ । कौन है, जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर सके । स्वयं तुम्हारे पिता, महाराज विशाल में भी यह ताकत नहीं कि मेरी अवहेलना कर सकें ।” इतना कहकर सेनापति व्योम ने विवश राजकुमारी नीरा को पकड़कर अपनी छाती से लगा लिया और मदान्ध होकर उसके कपोलों को चूमना चाहा । राजकुमारी चिड़िया सी छुटपटाने लगी ।

अब इसके आगे विजय से न देखा गया । उसने पास ही पड़ा हुआ एक बड़ा सा पत्थर उठा लिया और उसे भरजोर व्योम के सर पर दे मारा । मूर्छित होकर व्योम भूमि पर गिर पड़ा ।

राजकुमारी भय से चीखकर विजय से बोली—“उफ ! यह क्या किया तुमने ?...यह आफत ढा देगा । इस देश में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो इसका सामना कर सके ।”

विजय—“परन्तु मैं इसका सामना अवश्य करूँगा राजकुमारी !”

राज०—“कौन हो तुम ?”

विजय—“मैं एक विदेशी व्यक्ति हूँ सुन्दरी !”

राजकुमारी भय से चीख उठी—“तुम विदेशी हो ? युवक ! तुम विदेशी हो ?...भागो, नहीं तो यहाँ वाले तुम्हें जीवित न छोड़ेंगे । जाओ—भाग जाओ !”

विजय—“कैसे भागूँ, मुझे तो रास्ता भी नहीं मालूम है । मुझे तो एक पीतल की मूर्ति जबरदस्ती यहाँ तक घसीट लाई है ।”

राज०—“पीतल की मूर्ति ?...ओह ! तो क्या तुम्ही वह हो, जिसके

विषय में हमारे पूर्वज कहते आते थे । हमारे पूर्वज कहते थे कि एक भयानक पीतल की मूर्ति एक विदेशी पुरुष को यहाँ पहुँचा जायगी । वह पुरुष बहुत सुन्दर होगा । वही 'रक्तमन्दिर' का भेद खोलेंगा ।...अच्छा, आप आइये मेरे साथ—नहीं तो यहाँ रहने पर आप की जान न बचेगी ।”

राजकुमारी विजय का हाथ पकड़कर आगे ले चली । रास्ते में विजय ने कहा—“सुन्दरी ! तुम्हें मैं कभी नहीं भूल सकता । तुम सदैव मेरे हृदय सिंहासन पर विराजमान रहोगी ।” कहकर विजय ने अनायास ही राजकुमारी को अपने वक्ष के पास खींच लिया । राजकुमारी कुछ न बोली । केवल विजय की छाती से चिपटी रही ।

परन्तु न जाने क्यों विजय काँप उठा । उसे याद हो आया कि उसने एक प्रण किया है और अभी तक उसका प्रण पूरा नहीं हुआ । जब तक वह अपनी प्रेत-आत्मा को नर-रक्त का पान न करा लेगा तब तक वह कोई सुख न भोग सकेगा ।

राजकुमारी विजय को लेकर अपने कक्ष में आई और बोली—“मैं तुम्हें अपने महल में ही छिपा कर रखूँगी । कोई विपत्ति तुम पर न आने पायेगी । जब तुम 'रक्त-मन्दिर' के अगाध धन के मालिक हो जाओगे, तब मैं तुम्हारी रानी बनूँगी ।”

उस रात दोनों एक ही कमरे में सोये, परन्तु आधी रात को ही एक प्रकार की भयंकर आवाज सुनकर दोनों की नींद टूट गई । •

दोनों ने भय के साथ देखा कि उस कमरे में एक भड़ी काली परछाई खड़ी है ।

राजकुमारी चीख कर विजय से लिपट गई । विजय भी भय से आक्रान्त होकर उस काली परछाई की ओर देखने लगा । काली परछाई धीरे-धीरे आगे बढ़ी ।



६

जिसे इस समय विजय ने अपना क्रीड़ा क्षेत्र बना रखा था, उस देश का नाम था 'चंगदेश' वहाँ धन का पारावार न था। उस देश में गरीब न थे, सभी धनवान तथा स्मृद्धिशाली थे। सभी के मकान स्वर्ण द्वारा निर्मित थे। सड़कों पर भी सोने के टुकड़े पड़े नजर आते थे। सड़कें शुद्ध ताम्बा द्वारा बनी थीं। नदियों के तट पर चाँदी और सोने के घाट थे। सोने की नौकायें थीं। कहने का तात्पर्य यह कि वहाँ पर हीरा-मोतियों की वर्षा होती रहती थी। चंगदेश के पास ही एक स्वर्ण पर्वत था—जो एकदम सोने का था।

चंगदेश के राजा का नाम था विशाल। महाराज विशाल बूढ़े हो चले थे। उनको केवल एक कन्या थी, जिसका नाम राजकुमारी नीरा था। उस देश का सेनापति एक बीर योद्धा था। नाम था उसका व्योम। वह बड़ा ही क्रूर एवं व्यभिचारी था। परन्तु उसके डर से कोई भी बोलता न था। स्वयं महाराज विशाल भी उससे भयभीत रहते थे। यही कारण था कि उस रात 'रक्तमन्दिर' के पास उसने राजकुमारी पर दुराचार करना चाहा था। वह तो अपने कार्य में सफलीभूत भी हो चुका होता, यदि दैवात् विजयसिंह वहाँ न पहुँच जाता।

लगभग आधी रात के सेनापति व्योम की मूर्छा टूटी। उसने देखा कि वह अब भी उसी स्थान पर पड़ा हुआ है, जहाँ उसने राजकुमारी को अपना बनाना चाहा था। अभी तक वह यह न जान सका था कि वह आदमी कौन था जिसने उस जैसे दुर्दान्त बीर से दुश्मनी करने की ठानी थी और उसके सर पर पत्थर मारकर उसे मूर्छित कर डाला था।

फिर भी व्योम उस आदमी पर बहुत क्रोधित था और सबसे ज्यादा क्रोध तो उसे राजकुमारी पर आ रहा था।

वह उठा और सीधे राजमहल की ओर खाना हुआ। महाराज विशाल के कमरे के सामने पहुँचकर उसने भीतर अपने आने की खबर भिजवाई। यदि और कोई होता तो इस आधी रात के वक्त महाराज से मुलाकात न हो सकती, मगर व्योम की कौन अवहेलना करता ?

लाचार महाराज ने उसे भीतर बुलवाया।

आते ही व्योम ने कहा—“महाराज मालूम होता है कि अब आप लोगों के बुरे दिन आने वाले हैं।”

महा०—“क्या हुआ व्योम ?”

व्योम—“राजकुमारी नीरा ने मेरा अपमान किया है। मैं इसका प्रतिशोध लूँगा, तब मेरी ज्वाला शान्त होगी।”

महा०—“राजकुमारी नीरा ने तुम्हारा अपमान किया है ? झूठ बोलते हो नीच सेनापति ! तुमने ही राजकुमारी का अपमान किया होगा, राजकुमारी तुम्हारा क्या अपमान कर सकती है ?”

व्योम—“यह न भूल जाइये महाराज ! कि इस समय चंगदेश की बागडोर पूरी-पूरी मेरे हाथों में है। मैं चाहूँ तो आपको अभी राजगद्दी से उतार कर स्वयं बैठ सकता हूँ। इस देश में कौन ऐसा है, जो मेरे आगे सर उठा सके। आपको राजकुमारी नीरा का विवाह मेरे साथ करना ही होगा।”

महा०—“चुप ! चुप व्योम ! तुम्हें चंगदेश के राजकुल के मान-अपमान का ध्यान है या नहीं ? जाओ ! मैं प्रातःकाल राजकुमारी को बुलाकर पूछूँगा।”

व्योम चुपचाप चला गया।

× × × ×

विजय और राजकुमारी नीरा एक दूसरे को अपनी छाती से लगाये

हुए सोये थे, परन्तु किसी प्रकार की आवाज सुनकर उनकी नींद टूट गई। उन्होंने देखा—कमरे के एक कोने में एक भद्दी सी काली परछाई खड़ी थी।

विजय ने तुरन्त उसे पहचान लिया। वह उसकी साधित प्रेत-आत्मा थी और उसे इस बात का स्मरण दिलाने आई थी कि अभी तक वह प्यासी ही है।

राजकुमारी डरकर विजय से लिपट गई। परन्तु विजय ने उसे धैर्य बँधाया और कहा—“डरो नहीं प्रिये ! यह अपना हितैषी है। मैंने इससे प्रण किया था कि जब तक तुम्हें रक्त न पिला दूँगा, तब तक कभी सुख-सम्भोग में लिप्त न होऊँगा। आज मैंने अनायास ही अपना प्रण तोड़ा है, अब यह क्रुद्ध होकर मेरे पास आया है। यदि इसी समय इसे रक्त न पिला सका, तो यह मेरा ही रक्तपान करेगा।”

राज०—“यह रक्त चाहता है ? अच्छा देखो !—‘रक्तमन्दिर’ में एक विशाल रक्त-कुण्ड है। वह मानव-रक्त से लबालब भरा है। इस चंगदेश में आज तक जितने विदेशी आये हैं, सभी को ‘रक्तमन्दिर’ में बलिदान किया गया है। उन्हीं का रक्त उस रक्त-कुण्ड में एकत्रित है। वह रक्त-कुण्ड बीस हाथ लम्बा, १० हाथ चौड़ा तथा सौ हाथ गहरा है।”

विजय सुनकर काँप उठा। उफ़ ! कितना रक्त होगा उस रक्त-कुण्ड में ?

कुछ देर बाद वह प्रेत-आत्मा से बोला—“पवित्र आत्मा ! ‘रक्तमन्दिर’ में जाकर तुम खूब रक्तपान कर सकती हो। अवश्य ही तुम्हारी प्यास बुझ जायगी।”

इतना सुनते ही वह काली परछाई लुप्त हो गई। विजय और राजकुमारी पुनः प्रेमालाप में निमग्न हो गये।

राजकुमारी ने अभी तक विजय को बनमानुष की पोशाक में नहीं देखा था। विजय ने वह पोशाक एक जगह यत्नपूर्वक रख दी थी।

प्रातःकाल होते ही एक प्रकार का भयानक आतंक समग्र चंगदेश में छा गया। महाराज के मुख पर चिन्ता की हवाइयाँ उड़ने लगीं। बात यह थी कि आज प्रातःकाल एक विचित्र घटना का पता लगा था।

वह घटना यह थी कि 'रक्त-मन्दिर' के महापुजारी जिस समय नित्य की भाँति आज उस अगाध रक्त-कुण्ड के निरीक्षण को गये, तो उसे एकदम सूखा पाया।

यही भय का कारण था, क्योंकि पूर्वकाल से ही यह किंवदन्ती चली आ रही थी कि जिस दिन यह रक्त-कुण्ड सूख जायगा, उस वर्ष 'रक्त-मन्दिर' के भयानक भेदों का एक विदेशी द्वारा रहस्योद्घाटन होगा। चंगदेश के निवासी विदेशियों को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे और वे नहीं चाहते थे कि 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष पर किसी विदेशी व्यक्ति का अधिकार हो। इस विषय पर विचार करने के लिये चंगदेश के अधीश्वर महाराज विशाल की अध्यक्षता में एक महती सभा हुई।

महाराज ने कहा—“प्रिय प्रजाजनों! आज तक यह चंगदेश अपना था, यहाँ की सभ्यता तथा यहाँ का अतुलित वैभव सब कुछ अपने थे, परन्तु अब विपत्ति के दिन आये दीखते हैं। उस रक्त-कुण्ड का सूख जाना इस बात का द्योतक है कि किसी विदेशी की छाया हमारे देश तक पहुँच चुकी है और शीघ्र ही 'रक्त-मन्दिर' का समग्र-वैभव उसके अधिकार में चला चायगा। यद्यपि 'रक्त-मन्दिर' में कितना धन है—क्या-क्या है, यह कोई नहीं जानता, परन्तु यह बात प्रचलित है कि 'रक्त-मन्दिर' के भीतर अगम कोष एकत्रित है, जिससे एक नई ही दुनिया बसाई जा सकती है। आज हम इसी विषय पर विचार करेंगे कि विदेशी सत्ता को प्रभावित करना चाहिये या नहीं?”

व्योम—“नहीं । हर्गिज नहीं । हमें अपनी जान देकर के भी अपने स्वत्व की रक्षा करनी चाहिये ।”

सर्व सम्मति से यही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और सभा विसर्जित हुई ।

उसी दिन रात्रिकाल में राजकुमारी नीरा और विजय में खूब प्रेमालाप हो रहा था । राजकुमारी नीरा अद्वितीय सुन्दरी थी, विजय भी पुरुष-श्रेष्ठ था । राजकुमारी उस देश की सबसे अधिक सुन्दरी थी, उसके मुख पर चाँद खेलता था । विजय उसकी अनुपम रूप-राशि पर मुग्ध था । उस समय दोनों आनन्द में तल्लोन थे । एक दूसरे से लता की तरह दोनों चिमटे हुए थे । ऐसा लगता था मानो वे कभी अलग न होंगे ।

विजय बोला—“प्रिये ! मन चाहता है कि सदैव तुम्हें इसी प्रकार हृदय से दाबे पड़ा रहूँ, परन्तु कर्तव्य मुझे बाध्य किये देता है । मैं चाहता हूँ कि पहले समग्र सुखों का परित्याग करके ‘रक्त-मन्दिर’ का रहस्य खोलूँ । परन्तु मैं देख रहा हूँ कि यह कार्य अत्यन्त कठिन है । बिना तुम्हारी सहायता के यह असम्भव है राजकुमारी !”

• राज०—“यद्यपि हमारे देश में विदेशी को प्रेम की दृष्टि से देखना तथा उसकी सहायता करना अत्यन्त घृणित समझा जाता है, तथा हमारे देश के राजनियम के विरुद्ध भी है—परन्तु मैं अवश्य ही तुम्हारी सहायता करूँगी । यह समझ लो प्रियतम ! कि यह कार्य अत्यन्त कठिन है । आज की सभा में तुम्हारे विरुद्ध राय पास हुई है । सभी, यहाँ तक कि पिताजी भी तुम्हारे विरुद्ध हैं । और अवश्य ही तुम्हारे मार्ग में आशातीत बाधा पहुँचायेंगे । अच्छा हो कि तुम अपना यह विचार छोड़ दो ।”

विजय—“ऐसा न कहो प्रिये ! मुझे हतोत्साह न करो । मुझे कोई मार्ग अवश्य बताओ ।”

राज०—“देखो ! बिना पिताजी की सहायता के मैं कुछ भी नहीं कर सकती । पिताजी के पास एक ऐसी पुस्तक है, जिसमें ‘रक्त-मन्दिर’ के

तिलस्म का पूरा हाल लिखा है। परन्तु पिताजी वह पुस्तक मुझे कभी न देंगे।”

विजय—“तुम बताओ कि वह पुस्तक तुम्हारे पिताजी कहाँ रखते हैं? मैं स्वयं ले लूँगा। तुम जरा भी शंका न करो, मेरी अतुलित शक्ति का तुम्हें अभी पता नहीं है।”

राज०—“देखो! पिताजी की खास आलमारी में वह पुस्तक रहती है। परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम वहाँ जा सकोगे। वहाँ जाने पर तुम्हारी जान का खतरा है।”

विजय—“तुम निश्चिन्त रहो प्रिये! मेरा कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा। तुम मुझे सभी आवश्यक बातें बता दो, क्योंकि मैं महाराज के कमरे से पुस्तक लेकर तुरन्त ही खाना हो जाऊँगा। फिर ‘रक्त-मन्दिर’ से वापस आकर ही तुमसे भेंट करूँगा।”

राज०—“पिताजी के कमरे से ही एक गुप्त सुरंग ‘रक्त-मन्दिर’ तक गई है। तुम वह पुस्तक लेकर उसी सुरंग द्वारा भाग कर ‘रक्त-मन्दिर’ में आ जाना। वहाँ पर तुमने महाकाल के मुख के सामने तथा शेरों की मूर्तियों के बीच में दो मानवीय मूर्तियाँ देखी होंगी। उनमें से एक मूर्ति मेरी जैसी है, और दूसरी पिताजी की है। उसी के सामने दीवार में एक हीरे की मूठ लगी है, उसे सात बार दाहिनी ओर घुमाना, तो मेरी और पिताजी की मूर्तियाँ उस महाकाल के मुख की ओर घूम जायँगी। उसी समय उस महाकाल के मुख से एक डरावना शब्द निकलेगा और वह अपना मुख फाड़ देगा। तुम सरलतापूर्वक उसके मुख में चले जाना।”

विजय—“धन्यवाद!”—कहकर उठ खड़ा हुआ और बनमानुष की तिलस्मी पोशाक कंधे पर रख ली। उसने उस पोशाक को राजकुमारी को दिखाना ठीक न समझा। उसने सोचा शायद उस भयानक पोशाक को देख कर राजकुमारी डर जाय।

उसने राजकुमारी को गले से लगाकर उसका चुम्बन किया और

तब चल पड़ा। कुछ दूर जाकर उसने अपने बदन पर बनमानुष की पोशाक पहन ली। उस पोशाक में यह अस्तर था कि उस पर किसी भी हथियार से ज़ख्म नहीं पहुँच सकता था और उसे पहनने वाला मनुष्य जब चाहे तब लुप्त हो जा सकता था।

X

X

X

X

महाराज विशाल के कमरे में सन्नाटा छाया हुआ है। केवल एक मोमी शामदान जल रहा है, जिसकी मद्धिम रोशनी कमरे भर में फैली हुई है।

महाराज विशाल इस समय पलंग पर पड़े हुए प्रगाढ़ निद्रा के वशी-भूत हैं। सामने की दीवाल में एक आलमारी दृष्टिगोचर हो रही है, जिसमें एक मजबूत ताला बन्द है। कमरे में दो दरवाजे हैं, जो इस समय खुले हुए हैं। महाराज निद्रा देवी की उपासना में निमग्न हैं। उन्हें वाह्यजगत की जरा भी सुध नहीं है।

उस कमरे में जरा-सी भरभराहट की आवाज हुई और एक क्षण के लिये उस कमरे के एक कोने में एक विकराल बनमानुष की सूरत खड़ी दिखाई दी, फिर तुरन्त ही गायब हो गई।

एकाएक उस आलमारी का ताला अपने आप ही खुल गया और आलमारी के पल्ले भी उसी प्रकार अपने आप खुल गये। आलमारी के अन्दर की चीजें इधर-उधर सरकने लगीं, मानो कोई अदृश्य हाथ उन्हें इधर-उधर सरका करके कोई मतलब की वस्तु खोज रहा है। एका-एक एक सोने के जिल्द की किताब अपने आप ही आलमारी से बाहर निकल आई।

उसी समय कुछ खटका हुआ और महाराज विशाल की निद्रा खुल गई। उन्होंने देखा कि उनकी आलमारी के पल्ले खुले हैं और उनकी तिलस्मी किताब आलमारी से बाहर निकल कर हवा के बीच में लटकी हुई है। अनुभवी महाराज शीघ्र ही समझ गये कि इस समय उनके

कमरे में कोई भयानक घटना हो रही है। उन्होंने उठने का प्रयत्न किया, उसी समय बादल के गरजने की सी आवाज आई—“ठहरो ! उठने की कोशिश न करो।”

महाराज ने इधर-उधर देखा परन्तु कोई दीख न पड़ा। तो फिर यह आवाज कहाँ से आई ?

महाराज ने पड़े ही पड़े अपने तकिये के नीचे से एक चश्मा निकाला और उसे अपने आँखों पर लगा लिया। वह चश्मा भी तिलस्मी था और उसके लगाये रहने पर अदृश्य वस्तुयें भी देखी जा सकती थीं। उसी चश्मे से महाराज ने देखा कि उनकी आलमारी के पास एक भयानक बनमानुष उपस्थित है और उसी के हाथ में उनकी तिलस्मी किताब है। महाराज तड़फड़ा कर उठ बैठे और पास ही लगी हुई एक मूठ उमेठ दी, जिससे आलमारी के दोनों खुले हुए दरवाजे फट-फट कर अपने आप ही बन्द हो गये।

तब महाराज तड़क कर बोले—“खबरदार ! उस पुस्तक को हाथ न लगाना। अब तुम बचकर नहीं जा सकते। जानते हो—मैं तिलस्म का राजा हूँ। ऐसी पोशाकें बहुत देख चुका हूँ मैं।”

विजय ने सोचा कि अब तो वह किताब पा ही चुका है, अतः जल्द ही भाग चलना चाहिये। कौन जाने महाराज उसे फँसा ही लें—वे तिलस्म के सम्राट जो ठहरे !

महाराज हाथ में तिलस्मी तलवार लेकर आगे बढ़े। उसी समय एक जोरों की धड़के की आवाज हुई और उस कोठरी में बहुत सा धूआँ पैदा हो गया। दो मिनट बाद जब वह धूआँ साफ हुआ तो बनमानुष वहाँ न था। वह तिलस्मी किताब लेकर गायब हो चुका था।

महाराज चिन्ता पड़े—“उफ ! वह तिलस्मी किताब लेकर भागना चाहता है। पकड़ो ! पकड़ो !”—कहते हुए महाराज ने पास ही दीवाल में लगे हुए कई चरखे घुमा दिये, फिर ठंडी साँस लेकर बोले—“देखें

अब वह शैतान कैसे बाहर जाता है ? मैंने सभी रास्ते बन्द कर दिये हैं— सिपाही !”

तुरन्त ही सैकड़ों सिपाही दौड़े हुये आये । 'महाराज ने उन्हें सब कोना-कोना छान डालने को कहा । सिपाही तेजी के साथ चले गये, परन्तु बहुत खोजने पर भी उस बनमानुष का पता न लगा ।

आधी रात के सन्नाटे में बनमानुष की पोशाक पहने तथा तिलस्मी किताब लिये हुए विजय सकुशल 'रक्तमन्दिर' में पहुँच गया । वह अन्तर्-ध्यान था, अतः पहरदारों की दृष्टि उस पर न पड़ सकी । 'रक्तमन्दिर' में आकर उसने दीवाल में लगे हुए यंत्र को घुमा दिया, जैसा कि राज-कुमारी ने उससे कहा था । यंत्र घुमाते ही उन दोनों मानवी मूर्तियों का मुख घूम कर महाकाल के मुख की ओर हो गया और महाकाल ने अपना मुख पूरा फाड़ दिया, जिसमें खड़ा हुआ एक आदमी मजे में चला जाय । विजय बंधड़क उसके मुख में घुस गया ।

उसके घुसते ही महाकाल ने अपना मुख बन्द कर लिया, केवल थोड़ा-सा खुला रहा, जैसा पहले था । वे दोनों मानवीय मूर्तियाँ भी घूमकर यथावत् हो गईं । विजय ने 'रक्तमन्दिर' के भयावह तिलस्म में प्रवेश किया ।

×

×

×

×

प्रातःकाल होते ही राजमहल में शोर मच गया । सभी भय से काँपने लगे । बात यह थी कि आज रात में एक विकराल बनमानुष ने महाराज विशाल की तिलस्मी किताब चुरा ली थी और लाख खोजने पर भी उसका पता न लग सका था ।

यही भय का कारण था । राजकुमारी ने यह समाचार सुना । वह बहुत प्रसन्न हुई परन्तु यह जानकर कि तिलस्मी पुस्तक ले जाने वाला विजय नहीं बल्कि एक बनमानुष है, वह कुछ चिन्तित भी हुई, क्योंकि विजय मनुष्य था और बनमानुष की पोशाक में उसने विजय

को कभी देखा न था। उसने समझा कि यह बनमानुष कोई दूसरा ही आदमी है। अब विजय के लिए उसे बड़ी ही चिन्ता हुई। विजय क्या हुआ ? कहाँ चला गया ? उसे कुछ पता न लग सका।



७

उस विकट जङ्गल में खंगबहादुर और रसिक को भयानक घटनाओं सामना करना पड़ा। लड़ते—झगड़ते किसी प्रकार जब वे नदी के किनारे पहुँचे, तो देखा कि एक विकराल मगर उनके नाव की पतवार को अपने मुँह में पकड़े हुए उसे कोई विशाल जीव समझ कर, नदी के बीच में खींचे जा रहा है।

अब भागने का रास्ता एकदम बन्द था, उधर पीछे दानवों का झुण्ड पत्थर फेंक रहा था। बड़ी विकट समस्या आ खड़ी हुई थी। अन्त में रसिक के तीक्ष्ण दिमाग में तुरन्त ही एक युक्ति सूझ गई। उसने तमंचा साध कर कई गोलियाँ उस मगर पर छोड़ीं। सभी गोलियाँ उस मगर को लगीं और वह मृत्यु की यन्त्रणा से नदी भर में चीत्कार करता हुआ दौड़ने लगा। नाव की पतवार उसने छोड़ दी। दो ही मिनट बाद उस मगर की रक्तरंजित लाश नदी के स्वच्छ वक्षस्थल पर उतराने लगी।

अब जरा भी समय नष्ट न करके खंगबहादुर और रसिक अपनी नाव तक पहुँचने के लिये पानी में कूद पड़े। दानवों ने दौड़कर नदी तक उनका पीछा किया और पत्थर फेंके, परन्तु उन दोनों की कोई हानि न हुई।

दानवगण पानी में न उतरे । नदी के किनारे ही वे खड़े रहे । ऐसा प्रतीत होता था मानों वे पानी से बहुत डरते हों । खंगबहादुर और रसिक तैरते हुए सरलतापूर्वक अपनी नाव पर जा चढ़े । नाव ज्यों की त्यों थी, यद्यपि उसका पतवार मगर के पकड़ लेने के कारण कुछ खराब हो गया था ।

नाव पर चढ़कर एक बार दोनों ने भयभीत दृष्टि से किनारे की ओर देखा । दानवगण अब भी खड़े थे परन्तु नदी के पानी में उतरने का साहस नहीं कर रहे थे ।

खंगबहादुर ने कहा—“देखिये ! इसीलिये उस पुस्तक में जल द्वारा यात्रा करने को लिखा था । स्थल द्वारा यात्रा करने पर कोई मनुष्य इन भयानक दानवों से बच नहीं सकता । शायद ये दानव पानी में उतरने से डरते हैं ।”

रसिक०—“ऐसी ही बात है । परन्तु देखिये, वे सब हमारी नाव के साथ-साथ किनारे-किनारे चल रहे हैं । अब भी उनका इरादा भयानक प्रतीत होता है ।”

बात सत्य थी । उन दानवों ने इनका पीछा अब तक नहीं छोड़ा था । यद्यपि उन्हें पानी में उतरने का साहस नहीं था, फिर भी वे नाव के साथ-साथ नदी के किनारे चल रहे थे । कई कोस आ जाने पर भी उन्होंने जब पीछा नहीं छोड़ा, तब रसिक आदि को चिन्ता सवार हो गई ।

अब नाव को नदी के किनारे लगाना असम्भव था और बिना किनारे लगाये नाव पर ही कब तक यात्रा की जायगी ? बिना किनारे नाव लगाये पेठ की ज्वाला किस प्रकार शान्त होगी ? उधर दानवों की योली बराबर नाव के साथ-साथ स्थल मार्ग से चल रही थी । जीवन और मृत्यु का भयानक प्रश्न था ।

इसी द्विविधा में पड़े-पड़े नाव दो दिन और दो रात तक बराबर चली गई । इन दोनों ने नाव को बराबर नदी के मध्य में रखा, किनारे

कभी नहीं लगाया । दानवों की टोली भी बराबर नाव के साथ चलती रही ।

अब जुधा को रोक सकना असम्भव था । डौड़ चलाने की शक्ति किसी में भी नहीं रह गई थी । आज दो दिन से केवल जल पीकर दोनों रहते आ रहे थे । परन्तु इस प्रकार कितने दिन तक काम चल सकता था ?

अतः दोनों ने नाव का डौड़ चलाना बन्द कर दिया । नाव बहुत धीमी गति से अग्रसर होने लगी । खंगबहादुर और रसिक जीवन से निराश होकर नाव के पेंदे में लेट गये और ईश्वर का ध्यान करने लगे ।

उसी समय पानी के ऊपर कोई काली सी चीज दिखाई पड़ी । वह सूँस था । उसे देखकर रसिक की आँखें आशा से कुछ चमक उठीं । वह उठकर बैठ गया और हाथ में अपना तमंचा ले लिया । लगभग १० मिनट बाद फिर एक सूँस पानी के ऊपर उतराया, उसी समय रसिक ने अपने तमंचे का घोंड़ा दबा दिया । धौंय की आवाज हुई । नदी के किनारे पीछा करते हुए दानवों ने भय के साथ उस आवाज को सुना । वे उस यन्त्र से बहुत डरते थे, जो ज़रा सी देर में बलवान मनुष्यों की हत्या कर सकता था ।

रसिक का वार खाली न गया और कुछ ही देर में वह सूँस मर कर नदी के वृक्ष पर उतराने लगा । अतीव उत्साह के साथ रसिक ने उस मरे हुए सूँस को नाव पर लादा और दोनों भूखे बाघ की तरह उस सूँस के वदन से कच्चा ही माँस नोच-नोच कर खाने लगे ।

वह दृश्य बड़ा ही भयानक एवं कष्टकर था । किसी तरह दो दिन तक उस सूँस के माँस से काम चल सका, परन्तु इसके बाद और भी कठिन समस्या आ उपस्थित हुई ।

अब इनकी नाव एक ऐसी जगह पहुँच गई थी, जहाँ नदी के किनारे-किनारे एक छोटी सी पहाड़ी चल रही थी । पुस्तक में बताये हुए संकेत

के अनुसार यही वह स्थान था, जहाँ नाव की यात्रा छोड़कर उन्हें पैदल उत्तर पश्चिम की यात्रा करनी थी—अभी तक वे सीधे उत्तर की यात्रा करते आये थे ।

परन्तु अब भी उन दानवों का भय लगा हुआ था । यद्यपि पिछले दो दिनों से उनकी सूत दिखाई नहीं पड़ी थी, परन्तु रसिक का ख्याल था कि अवश्य ही लोग नदी के किनारे छिपे हुए उनका पीछा कर रहे हैं, ताकि उन्हें न देख कर वे लोग अपनी नाव नदी तट पर लगावें और उन भयानक दानवों की मनोकामना सिद्ध हो ।

यद्यपि रसिक का यह अनुमान ही था, फिर भी उन्हें नाव नदी के किनारे लगानी ही पड़ी, नहीं तो रास्ता भूल जाने का भय था ।

डरते हुए उन दोनों ने नाव किनारे लगाई । उन्हें दानवों का अत्यन्त भय था, परन्तु एक भी दानव जब दिखाई न पड़ा, तो उन दोनों का साहस बढ़ा । उन्होंने नाव जमीन पर खींच कर एक पेड़ के साथ बाँध दी और अपना-अपना सामान लेकर जो रास्ता उस पुस्तक में बताया गया था, उसी से खाना हुए ।

उन्हें लुधा सता रही थी, परन्तु उस जंगल में कोई फल का पेड़ ही दृष्टिगोचर न हुआ । लाचार खाली पेट ही वे आगे बढ़ने लगे । ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते गये, त्यों-त्यों जङ्गल भी काँटेदार और घना मिलने लगा । उनके पैरों में बहुत से काँटे चुभ गये । उनके कपड़े चिथड़े-चिथड़े होकर फट गये । फिर भी उन्होंने हिम्मत न छोड़ी ! दो दिन तक जंगल में कुछ भी भोजन न मिल सका । कोई जानवर भी न मिला कि उसका शिकार कर वे अपनी लुधा शान्त करते ।

उस भयावने जंगल में न तो एक चिड़िया थी और न तो कोई जानवर ही दृष्टिगोचर होता था । समस्या बड़ी विकट थी । परन्तु फिर भी उन्होंने धैर्य नहीं खोया और पेड़ों की पत्तियाँ चबा-चबा कर अपनी लुधा-ज्वाला शान्त की ।

इसी प्रकार कई दिन व्यतीत हुए । अन्त में एक दिन भयावने जंगल का अन्त हुआ, परन्तु इस बार उन्होंने अपने सामने वह दृश्य देखा कि उनके छक्के छूट गये । उनके सामने जहाँ तक दृष्टि जाती थी, ऊसर ही ऊसर दृष्टिगोचर होता था । सैकड़ों कोस का वह ऊसर था, जिसमें पेड़ों की छाया भी नहीं, पानी का एक भी श्रोत नहीं, भोजन प्राप्त करने का तानिक भी साधन नहीं । परन्तु वे दोनों लाचार थे । 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोप की लालच ने उन्हें शक्ति प्रदान कर दी थी ।

वे यह सोच कर आगे बढ़े कि कदाचित् दो चार कोस आगे चलने पर कोई भोज्य पदार्थ मिल जाय । परन्तु ज्यों-ज्यों वे उस ऊसर में अग्रसर होने लगे, त्यों-त्यों सूर्य भगवान की सीधी किरणें उनका खोपड़ा जलाने लगीं—पास में शरण लेने के लिये एक भी पेड़ न था । नीचे की जमीन तवे की तरह जल रही थी । प्यास के मारे कण्ठ सूख रहा था । भूख के कारण तबियत बेचैन थी, अन्त में आगे चलना असम्भव हो गया और वे दोनों उसी तपती हुई भूमि पर लेटकर छुटपटाने लगे ।

दिन भर किसी तरह कटा, जब रात हुई तो उदय होते हुए चन्द्र देव की किरणों ने उन्हें कुछ जीवन प्रदान किया । वे साहस करके उठे और आगे बढ़े । रात बीतते-बीतते तक वे चलते ही गये । सुबह की सुफेदी आस्मान पर फैल चुकी थी जब कि उन दोनों ने अपने सामने एक हरी-भरी जमीन देखी ।

उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठा । वे लम्बे-लम्बे ढग बढ़ाते हुए वहाँ पहुँचे, तो देखा क्या कि वह नीम के वृक्षों का एक वृहदाकार भयावना जंगल है । जहाँ तक दृष्टि जाती थी, नीम के वृक्ष ही दृष्टिगोचर होते थे—जिनकी कड़वी पत्तियों से भला कैसे उन दोनों की लुधा बुझ सकती थी । वे दोनों उस नीम के भयानक बन में इधर से उधर घूमने लगे, कि शायद कोई दूसरा वृक्ष मिल जाय जिसकी पत्तियाँ या छाल उनकी भूख बुझा सके । परन्तु उनकी आशा सफलीभूत न हुई और दोनों

लुधा-तृष्णा से सन्तप्त होकर तड़पते हुए कटे वृक्ष की तरह जमीन पर गिर पड़े ।

इस समय दोनों की विचित्र दशा थी । दोनों ही प्यास और भूख से तड़प रहे थे—परन्तु जीवन-रक्षा का उनके पास कोई उपाय न था, सिवा इसके कि उनमें से एक साथी दूसरे को मार कर खा जाय ।

और यही हुआ भी । खंगबहादुर पर लुधा ने इतना आक्रमण कर दिया कि उनका मुँह पिशाच जैसा भयंकर हो उठा । उन्होंने अपने जेब से तमंचा निकाला और रसिक की ओर साधा ।

रसिक उस समय अर्द्धचैतन्य अवस्था में भूमि पर पड़ा हुआ था परन्तु उसने देख लिया कि खंगबहादुर उसे मार कर खा जाना चाहता है । अतः शीघ्रता से उसने भी अपना तमंचा निकाल लिया और गरज कर बोला—“खबरदार ! मुझे मार कर खा जाने का इरादा छोड़ो, नहीं तो मैं भी तुम्हें जिन्दा न छोड़ूँगा । धैर्य से काम लो खंगबहादुर !”

खंग०—“शैतान ! मैं तुम्हें जरूर मारूँगा । तुम्हीं ने मुझे ऐसी राय दी थी कि आज मैं पानी-दाने बिना एक उजाड़ देश में मर रहा हूँ ।”

खंगबहादुर ने तमंचे के घोड़े पर हाथ रखा, उसी समय रसिक ने खंगबहादुर की कलाई तक कर गोली चला दी । खंगबहादुर का हाथ जख्मो हो गया और तमंचा उनके हाथ से छूट कर भूमि पर जा गिरा । रसिक ने आगे बढ़कर वह तमंचा उठा लिया । फिर उसी प्रकार समय बीतने लगा । दोनों में से किसी को भी हिल सकने की शक्ति न थी । दोनों मृत्यु की अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए पड़े थे—परन्तु कितनी भयानक होगी वह मृत्यु !

दो दिन और बीते । अब रसिक का भी लुधा की यन्त्रणा से बुरा हाल हो गया था । अब वह सोचने लगा—“यह निकम्मा खंगबहादुर मेरे साथ रह कर क्या करेगा ? क्यों न इसे मार कर मैं अपनी भूख बुझाऊँ ?”

रसिक ने खंगबहादुर को मारकर खा जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया । उसने अपना तमंचा निकाला । खंगबहादुर का भी तमंचा रसी के पास था, अतः उनसे डरने की कोई आवश्यकता न थी ।

जब खंग बहादुर ने देखा कि अब उसे ग्रसने के लिये रसिक का तमंचा तैयार है, तो वे दीन-वाणी में गिड़गिड़ाते हुए कहने लगे—
“मुझे न मारो...न मारो रसिक ! मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ । पाँव पड़ता हूँ ।”

रसिक—“मैं तुम्हें जरूर मारूँगा—जरूर मारूँगा और अपनी भूल बुझाऊँगा—तुम्हारे खून से अपनी प्यास बुझाऊँगा ! तुम निकम्मे हो । तुम जीवित रह कर क्या करोगे ?”

कहते हुए रसिक ने एक पैशाचिक अट्टहास किया, जिससे नीम का वह भयानक बन गूँज उठा । रसिक ने अपने तमंचे के घोड़े पर हाथ रखा । खंगबहादुर के नेत्रों के सामने मृत्यु की, दुर्दशाजनक मृत्यु की भयंकर प्रतिमा नृत्य करने लगी ।



‘रक्त-मन्दिर के भयानक तिलिस्म में भ्रमण करना विजय ने जितना कठिन सोचा था, उससे कहीं अधिक कठिन निकला ।

यदि उसके पास वह तिलस्मी पुस्तक तथा बनमानुष की पोशाक न होती, तो वह कदापि ‘रक्तमन्दिर’ के गुप्त भागों की सैर न कर सकता । ये वस्तुएँ साथ रहने पर भी स्थान-स्थान पर उसे दुरूह कठिनाइयों का

सामना करना पड़ा। अगर उसमें असीम सहस्र न होता, तो वह अवश्य घबड़ा जाता और किसी न किसी भयानक तिलस्मी घटना में पड़कर अपना प्राण विसर्जन कर बैठता।

विजय ने कोई खटका दबाया और दीवाल से हट कर दूर खड़ा हो गया। खटका दबाते ही घड़-घड़ की आवाज होने लगी। दो मिनट बाद ही उस साफ दीवाल में एक चौड़ा दरवाजा दृष्टिगोचर होने लगा। उस दरवाजे की राह विजय बहुत शीघ्र एक हरे-भरे उद्यान में पहुँच गया। उस उद्यान की शोभा निराली थी। उसके मध्य भाग में संगमरमर का एक श्वेत मकान बना हुआ था।

अपनी इस यात्रा में विजय ने जितने बँगले और उद्यान देखे थे, उन सबसे यह बँगला और उद्यान निराला एवं सुन्दर था। जब से विजय 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में घुसा था, तब से बराबर बनमानुष की भयानक पोशाक अपने शरीर पर धारण किये हुए था। इस समय भी वह भयंकर पोशाक उसके बदन पर थी, जिससे उसकी आकृति एक दीर्घाकार बनमानुष-सी लग रही थी। विजय उस उद्यान में इधर-उधर टहलने लगा।

उद्यान में टहल लेने के पश्चात् उसने बँगले का निरीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। यह कार्य भी समाप्त कर चुकने पर वह एक कमरे में आकर आराम करने लगा। उस कमरे में पलंग आदि आवश्यक वस्तुएँ प्रस्तुत थीं। लेटे हाँ लेटे विजय ने वह तिलस्मी किताब निकाली और उसे पढ़ने लगा। क्योंकि उसे अपना आगे का कार्य निर्धारित करना था।

उस पुस्तक में यों लिखा था—“यहाँ तक तुम पहुँच गये। यह प्रसन्नता की बात है, परन्तु इसके आगे का 'रक्तमन्दिर' का तिलस्म भयानक कारीगरी से भरा हुआ है। उसमें जाते समय बहुत होशियारी और बुद्धि की आवश्यकता पड़ेगी, साथ ही अगर तुम्हारे पास कोई ऐसा तिलस्मी सामान नहीं है, जिससे तुम अपनी रक्षा

कर सको— तो उधर कदापि पैर न रखो । अगर तुम्हारे पास कोई तिलस्मी हथियार या पोशाक है, तो तुम निर्भय होकर आगे बढ़ सकते हो— केवल थोड़ी सी सावधानी की जरूरत पड़ सकती है । इस बँगले के उत्तर की ओर जो बड़ा सा कमरा है उसमें चले जाना ! वह कमरा बड़ा डरावना मालूम देता है और वास्तव में है भी । उसकी दीवारें, छत और फर्श सब काले रंग की हैं, जिससे उस कमरे में दिन के समय भी डरावना अन्धकार छाया हुआ रहता है । उस कमरे में घुसते ही तुम देखोगे कि तुम्हारे कानों में तरह-तरह की डरावनी आवाजें आने लगेंगी । तरह-तरह की चिल्लाहट तथा चीख और पैरों की धमधमाहट की आवाज सुनकर तुम डर जाओगे । ऐसा मालूम होगा कि उसी कमरे के अन्दर कितनी ही भयानक घटनायें हो रही हैं, मगर तुम एक भी आदमी की सूरत न देख सकोगे । तुम्हें कुछ भी दिखाई न पड़ेगा । केवल तरह-तरह के भयानक डरावने शब्द तुम सुनोगे । परन्तु इससे जरा भी नहीं डरना । यह तो केवल कुछ मर्शानों की आवाज है, जो ठीक उस कोठरी के नीचे बैठाई हुई हैं । दक्षिण ओर की दीवाल के पास तुम चले जाना । वहाँ तुम एक यन्त्र देखोगे उस यन्त्र को बाईं ओर छः बार और दाईं ओर ६ बार फिर बाईं ओर ३ बार घुमाना, तुरन्त ही एक दरवाजा दिखाई पड़ेगा और नीचे उतरने को सीढ़ियाँ मिलेंगी । तुम उनकी राह नीचे उतर जाना । मगर खबरदार ! यन्त्र घुमाने में कमी-बेसी न करना, नहीं तो उस कोठरी की छत तुम्हारा प्राण ले सकती है—”

यहाँ तक पढ़कर विजय ने पुस्तक बन्द कर दी और आराम करने लगा । शीघ्र ही उसे नींद आ गई । दो घण्टे बाद जब वह उठा, तो उसके बदन में कुछ ताजगी और फुर्ती आ गई थी । अब वह उस बँगले के उत्तर वाले कोने में बने हुए कमरे की ओर बढ़ा । उस कमरे का दर-

वाजा बन्द था। विजय ने चौखटे के पास का कोई यंत्र दबाकर वह दरवाजा खोला और भीतर प्रविष्ट हुआ।

वह कमरा सचमुच भयंकर था। काले रंग से पुती हुई दीवालें बड़ी डरावनी लग रही थीं। ज्योंही विजय उस कमरे में घुसा, त्योंही उस कमरे में से विचित्र डरावनी आवाजें आने लगीं। कोई दर्दनाक आवाज में चीख रहा है, ऐसा मालूम होता था। कभी ऐसा प्रतीत होता था मानो बीसों आदमी उस कमरे में पैर पटक-पटक कर चल रहे हैं, परन्तु विजय को किसी भी जीव की सूरत न दिखाई पड़ती थी।

यदि तिलस्मी किताब में उस स्थान का जिक्र न होता, तो अवश्य ही विजय डर कर वहाँ से भाग खड़ा होता। परन्तु वह असीम साहसी था और जानता था कि यह सब मशीनों की करामात है, जो ठीक उस कमरे के नीचे बैठाई गई हैं, ताकि यहाँ आने वाले को डरा कर मार डाला जाय। यद्यपि विजय पहले से ही होशियार था, फिर भी एक बार वह धोखा खा ही गया।

विजय उस भयंकर कमरे में घूमने लगा। उसमें उस दरवाजे को छोड़कर, जिससे विजय वहाँ आया था, चार दरवाजे और थे, जो सब इस समय बन्द थे। विजय पहले दरवाजे के पास गया और उसे ध्यानपूर्वक पढ़ने लगा। उस दरवाजे के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था 'मृत्युद्वार' इसके नीचे छोटे-छोटे अक्षरों में और भी कुछ लिखा था। विजय उसे पढ़ ही रहा था कि उसी समय उस कोठरी के बन्द दरवाजे के अन्दर से किसी स्त्री के चीखने की आवाज आई। वह स्त्री कह रही थी—“कोई मुझे बचाओ। यह शैतान मेरी जान लेकर छोड़ेगा। बचाओ ! बचाओ, कोई बचाओ मुझे !”

विजय यह आवाज सुनकर विचलित हो उठा। उसी समय उस मृत्युद्वार के दरवाजे अपने आप खुल गये। विजय अपने को सम्हाल न

सका और उस विपत्तिग्रस्ता स्त्री को बचाने के लिये भयानक मृत्युद्वार में घुस पड़ा !

उसके जाते ही वह दरवाजा अपने आप बन्द हो गया । भीतर जाने पर उसे कुछ भी दिखाई न पड़ा । तब विजय चौंका—उफ् ! उसने कितनी बड़ी गलती की है । उस स्त्री के चिह्नाने की आवाज भी उन्हीं मशीनों की बनावटी आवाज थी । अब क्या होगा ? उसने उस कोठरी में दृष्टि डाली ।

एक और दीवाल में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—“मृत्युद्वार !— इस कोठरी में २ मिनट से ज्यादा रहनेवाला मौत का शिकार होगा—”

विजय चौंक पड़ा । डर से उसकी बुरी दशा हो गई । उसने चटपट अपनी तिलस्मी पुस्तक निकाली और देखने लगा कि शायद उस पुस्तक में कहीं कोई बाहर निकलने का मार्ग लिखा हो । एक जगह उसे मनोवांछित लिखावट मिल गई ।

उस पुस्तक में एक स्थान पर लिखा था—“बहुत सम्भव है कि तुम ‘मृत्युद्वार’ में फँस जाओ । अगर तुम्हें वहाँ आये केवल एक मिनट बीता है, तब तो तुम निकल सकते हो । दरवाजे के पास लगी हुई कील को बाहर खींचो ।”

लपक कर विजय ने उस कील को खींच लिया और दरवाजा खुल गया । खुशी-खुशी विजय उस कमरे से बाहर निकल कर पुनः उस डरावने काले कमरे में पहुँच गया । उस कमरे में अभी तक चीखने-चिह्नाने एवं धमधमाहट की आवाजें आ रही थीं । परन्तु विजय अब उन पर ध्यान देनेवाला न था । वह मृत्युद्वार के बगलवाले दरवाजे पर ध्यानपूर्वक दृष्टि डालने लगा ।

वह दरवाजा भी बन्द था । उस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—“दानवदेश” नीचे छोटे-छोटे अक्षरों में लिखा था—“खबर-

दार ! यह दरवाजा न खोलो । यह रास्ता एक भयानक देश को गया है, जिसे दानवदेश कहते हैं । वहाँ जाने पर केवल मृत्यु ही हाथ लगेगी—”

विजय ने मस्तक का पसीना पोंछा, फिर उस बगल वाले दरवाजे को देखने लगा, जिस पर लिखा था—“जादूनगरी—यह रास्ता भी एक भयानक भूखंड में गया है । इसे खोलने का साहस करना प्राणघातक सिद्ध होगा ।”

अब विजय चौथे दरवाजे के पास आया, जिस पर लिखा था—
“रक्त-मन्दिर का भयानक भाग और कोषगृह”—

इसी दरवाजे से विजय को आगे बढ़ना था । विजय ने तिलस्मी किताब के अनुसार पास की दीवाल में लगे हुए एक यन्त्र को क्रम से घुमाया—पहले बाईं ओर ६ दफे, तब दाईं ओर ६ दफे और अन्त में बाईं ओर तीन दफे । यन्त्र घुमाते ही घड़-घड़ की आवाज करके वह दरवाजा खुल गया और नीचे उतरने की सीढ़ियाँ दृष्टिगोचर हुईं । विजय निर्भीकतापूर्वक सीढ़ियाँ उतर गया ।

इस समय उसने अपने को एक ऐसे कमरे में पाया, जिसमें चारों ओर छोटे-बड़े कल-पुर्जे लगे हुए थे और उनसे भयंकर आवाजें निकल रही थीं । विजय समझ गया कि इन्हीं आवाजों को उसने ऊपर वाले काले कमरे में सुना था ।

विजय उन कल पुर्जों की भयानक आवाजों के मध्य में कई मिनट तक खड़ा होकर आगे की कार्य-प्रणाली पर ध्यान देता रहा । दो मिनट के लिये उसने पुनः वह तिलस्मी किताब निकाली और उसमें न जाने क्या देखा, फिर किताब जेब में रखकर पास की दीवाल में लगे हुए किसी कल को ऎंठा । कल घुमाते ही सामने की दीवाल में एक दरवाजा पैदा हो गया ।

विजय उस दरवाजे की राह अन्दर घुसा । एक अन्धेरी सुरंग थी,

उसी में से वह चलने लगा । कुछ दूर जाने पर उसे अँधेरे में कोई चमकती हुई वस्तु दृष्टिगोचर हुई ।

वह चमकती हुई वस्तु बहुत भारी थी और उससे सुरंग का पूरा रास्ता छेका हुआ था । दूर से विजय यह अनुमान न लगा सका कि वह क्या वस्तु है, परन्तु साहस कर पास जाते ही वह सब कुछ समझ गया । वह एक चमकती हुई पीतल की मूर्ति थी और ठीक वैसे ही गाड़ीदार चबूतरे पर बैठाई हुई थी, जैसे गाड़ीदार चबूतरे की पीतल की मूर्ति की गोद में बैठकर विजय इस चंगदेश में आया था ।

विजय को देखते ही वह मूर्ति बोल उठी—“आओ दोस्त ! मैं तुम्हारा कब से इन्तजार कर रही हूँ । आओ, मेरे पास आओ, मैं तुम्हें तिलस्म की सैर करा लाऊँ ।”

विजय हैरान था, उन तिलस्मी मूर्तियों को ठीक आदमी की तरह बोलते सुनकर । वे मनुष्य कैसे होंगे जिन्होंने उन तिलस्माती खिलौनों की सृष्टि की ।

विजय उस मूर्ति की गोद में जाकर बैठ गया । साथ ही उस चबूतरे में कम्पन हुआ और नीचे से घड़-घड़ की आवाज आने लगी । विजय ने देखा कि वह चबूतरा रेलगाड़ी की तरह तेजी से आगे को दौड़ रहा है ।

तीन घण्टे तक वह यात्रा जारी रही और अन्ततोगत्वा एक उद्यान में आकर वह यात्रा समाप्त हुई । विजय उतर पड़ा और वह मूर्ति चबूतरे पर बैठी न जाने कहाँ चली गई ?

विजय एक उद्यान में था, जिसके उत्तर और दक्षिण आमने-सामने की ओर मकानों के सिलसिले दृष्टिगोचर हो रहे थे । उन मकानों में बीसों दरवाजे थे । परन्तु सभी बन्द थे । विजय उस मनोहारी उद्यान में टहलने लगा । अब तक वह काफी थक चुका था, फिर भी वह विश्राम करना नहीं चाहता था ।

वह चाहता था कि शीघ्र से शीघ्र 'रक्तमन्दिर' के भेदों का अन्त हो और वह अपनी जीवन-संगिनी राजकुमारी नीरा से विवाह कर सके ।

उस तिलस्मी किताब में विजय ने एक जगह यह लिखा हुआ देखा था—

“जो मनुष्य ‘रक्त-मन्दिर’ के भयानक भेदों को खोलकर उसके अगम कोष का अधीश्वर होगा, उसी के साथ चंगदेश की राजकुमारी का विवाह होगा । इसके विपरीत करने पर विपत्ति आयेगी ।”

यह पढ़कर विजय अत्यन्त प्रसन्न हुआ था । चंगदेश के महाराज विशाल भी यह बात जानते थे, परन्तु वे यह नहीं चाहते थे कि कोई विदेशी पुरुष ‘रक्त-मन्दिर’ के अगम कोष का अधीश्वर बनकर उनकी कन्या से विवाह करे ।

महाराज विशाल के पूर्वजों ने उन्हें आज्ञा दे रखी थी कि जिस दिन वह दिव्य पुरुष ‘रक्त-मन्दिर’ का रहस्योद्घाटन करके ‘रक्त-मन्दिर’ के भयानक तिलस्म से बाहर आ जाय, उसी दिन राजकुमारी नीरा की शादी उससे कर दी जाय ।

बड़ी देर तक विजय उस उद्यान में घूमता रहा । एकाएक किसी प्रकार की आवाज सुनकर उसने अपना सर घूमाया । देखा—कि उत्तर ओर के मकानों के सिलसिले का एक दरवाजा खुल गया है और उसके अन्दर से एक चमचमाता हुआ पीतल का हाथ निकल कर उसे अपनी ओर बुला रहा है । वह हाथ पीतल का था और बहुत बड़ा था । उस हाथ के अतिरिक्त और कुछ भी दीखाई न पड़ता था । विजय हैरान होकर उधर बढ़ा ।

इतने में पीछे की ओर से भी कुछ आवाज आई, मानो किसी ने उसे पुकारा हो—‘हे !’

विजय ने घूमकर पीछे की ओर देखा, तो दक्षिण ओर के मकानों के सिलसिले का भी एक दरवाजा खुला था और उसमें से भी पीतल का एक लम्बा हाथ निकला हुआ उसे अपनी ओर आने का संकेत कर रहा था

विजय आश्चर्यचकित रह गया ।

वह घूमकर दक्षिण की ओर ही बढ़ा, तब तक उत्तर की ओर से आवाज आई—‘हे’—

जब विजय ने उधर देखा, तो किसी आदमी की सूरत न दिखाई पड़ी । केवल वही पीतल का लम्बा हाथ उसे अपनी ओर आने का संकेत कर रहा था ।

जब विजय उत्तर की ओर जाने लगा, तो दक्षिण की ओर से आवाज आई—‘हे ।’

इसी प्रकार जब वह दक्षिण की ओर जाता, तो उत्तर से कोई पुकारता और जब वह उत्तर की ओर जाने लगता, तो दक्षिण की ओर से आवाज आती ।

विजय हैरान हो उठा । न जाने यह कौन-सा तिलस्मी तमाशा है ! तमाशा है या किसी वास्तविक घटना का सूत्रपात्र होने वाला है, कुछ समझ में नहीं आता । अतः वह लाचार होकर उस अद्भुत तमाशे पर आश्चर्य करता हुआ बीच में ही बैठ गया । और अपनी पुस्तक देखने लगा । कदाचित् वह यह जानना चाहता था कि उस विचित्र तथा भयानक तिलस्मी खिलवाड़ का उस तिलस्मी किताब में कहीं जिक्र है या नहीं ।

वास्तव में वह उस तिलस्मी तमाशे को देखकर बहुत हैरान तथा परेशान हो गया था, परन्तु सारी तिलस्मी किताब खोज डालने पर भी उस अद्भुत तमाशे का कहीं जिक्र ही न आया । वह विषय अन्धकार

में ही छोड़ दिया गया था । कहीं भी उस तमाशे का तनिक भी वर्णन न था ।

विजय चुपचाप बैठा रहा । बड़ी देर के बाद उत्तर की ओर से आवाज आई—“मेरी ओर आइये ।”

विजय ने उत्तर की ओर देखा । वह पीतल का हाथ उसे अपनी ओर बुला रहा था, परन्तु बोलने वाले का कहीं पता तक न था । इतने में ही दक्षिण की ओर से भी आवाज आई—“नहीं ! मेरी ओर आइये !—”

विजय ने उधर भी देखा, तो पीतल का लम्बा हाथ उसको आने का इशारा कर रहा था ।

विजय लुब्ध हो उठा ! उसे क्रोध भी आ गया । उसने निश्चय कर लिया कि अवश्य वह उस भेद का पता लगायेगा । वह उत्तर की ओर बढ़ा, उसी समय किसी ने दक्षिण की ओर से चिल्लाकर कहा—“उधर नहीं—उधर खतरा है ।”

अतः विजय दक्षिण की ओर बढ़ा, तो उत्तर की ओर से किसी ने चिल्लाकर कहा—“उधर नहीं—उधर खतरा है ।”

विजय पुनः रुक गया—किधर जाय, किधर न जाय—वह अजीब उलझन में जा फँसा । अन्त में वह उत्तर की ओर ही बढ़ा और उस खुले हुए दरवाजे के नजदीक पहुँचा, तो वह पीतल का हाथ दरवाजे के पीछे घुस कर गायब हो गया । विजय भी तेजी के साथ उस खुले हुए दरवाजे में घुस गया । उसके जाते ही दरवाजा बन्द हो गया और एक विकट हँसी सुनाई पड़ी । अन्दर जाने पर विजय को कोई भी दिखाई न पड़ा । परन्तु उस कोठरी को देख कर विजय चौंक पड़ा ।

यह वही ‘मृत्युद्वार’ नामक कोठरी थी, जिसमें विजय एक बार पहले भी आ चुका था, परन्तु इस बार दूसरे दरवाजे से आया था ।

उसने बाहर निकलने के लिये बाहरी दरवाजे का यन्त्र उमोठा,

परन्तु कोई नतीजा न हुआ । धीरे-धीरे दो मिनट बीत गये । अब बाहर निकलने का कोई रास्ता न रहा । विजय ने भय के साथ देखा कि पूर्व और पश्चिम ओर की दीवालें घड़-घड़ शब्द करती हुई, उसकी ओर बढ़ी आ रही हैं ।

वह काँप उठा । उफ् ! थोड़ी ही देर में आगे बढ़ती हुई ये दीवालें एक दूसरे से सट जाँयगी और वह उनके बीच में दब कर दुर्दशाजनक मृत्यु को प्राप्त होगा । विजय सर पर हाथ रखकर बैठ गया ।

दोनों दीवालें उसे घसने के लिये आगे बढ़ी आ रही थीं । विजय बाहर निकलने के लिये छुटपटा रहा था ।



९

खंगबहादुर की मृत्यु निकट थी ।

रसिकसाल ने, उस उजाड़ भूखण्ड में जुधा एवं तृषा से सन्तप्त होकर उसे मारने का दृढ़ निश्चय कर लिया था । यही नहीं, उसे मारने के लिये उसने अपना भयानक तमश्चा तान भी लिया था ।

यद्यपि खंगबहादुर के रोने गिड़गिड़ाने की उसने कुछ भी परवाह न की, परन्तु उसका हृदय मनुष्य की हत्या करके नर माँस से अपनी जुधा शान्त करना नहीं चाहता था, जब तक कि जुधा परितृप्ति का दूसरा प्रसाधन प्रस्तुत हो सके ।

परन्तु लाचार था रसिक ! उस विजन में और कोई साधन न था,

केवल यही युक्ति थी कि वह खंगबहादुर को अपने तमंचे से मारकर खा जाय और अपनी लुधा शान्त करले ।

मन में दृढ़ निश्चय करके रसिक ने तमंचे के घोड़े पर अँगुली रखी और चाहता ही था कि उसे दबाकर खंगबहादुर के प्राण का अन्त कर दे, कि उसी समय एक प्रकार की तेज भगदड़ की आवाज सुनकर वह रुक गया । उसने सामने की ओर देखा । देखता क्या है कि भुण्ड के भुण्ड जानवर भय से व्याकुल होकर उधर ही भगे आ रहे हैं । उनके भय का कारण क्या था, यह रसिक न जान सका । फिर भी ऐसा मालूम होता था कि दूर के किसी जंगल में कोई विपत्ति आ गई है, और उसी से व्याकुल होकर वे जंगली जन्तु उधर उधर भाग रहे हैं ।

भागने की धुन में उन्हें अपना पराया और मित्र-शत्रु कुछ भी नहीं सूझ रहा था, यहाँ तक कि हिरन और शेर तथा अन्य हिंसक जन्तु एक साथ भगे जा रहे थे । आसन्न भय ने उनकी बुरी दशा कर दी थी— यहाँ तक कि भय के मारे उन्हें अपने शत्रु की भी परवाह नहीं थी ।

अवश्य ही वह कोई भारी विपत्ति है, तभी तो जंगल के छोटे-बड़े सभी जानवर इस प्रकार भयभीत होकर भाग रहे हैं ।

रसिक का तमझावाला हाथ, जो खंगबहादुर की हत्या करने को प्रस्तुत हुआ था, तुरन्त ही उन भागते हुए जानवरों की ओर घूम गया । उसी समय धीँय की आवाज हुई और सामने से भागता हुआ एक हिरन भूमि पर गिरकर तड़पने लगा ।

खंगबहादुर चिल्ला उठे—“खूब किया मित्र !”

अब उन दोनों में रुकने की ताब नहीं थी । उस समय दोनों भूखे बाघ हो रहे थे ! दोनों भरसक तेज़ी के साथ उस हिरन की ओर दौड़े और पास जाकर उसके घावों से बहता हुआ ताज़ा रक्त पीकर अपनी प्यास बुझाने लगे । मनुष्य की पैशाचिक प्रवृत्ति का वह भयानक दिग्दर्शन था !

जब दोनों इच्छा भर रक्त पी चुके, तो हिरन के बदन से कच्चा मांस

नीच कर खाने लगे । वे न जाने कब तक इस प्रकार अपनी लुधा शान्त करने में संलग्न रहते, परन्तु पास ही आग जलने की तीव्र गन्ध ने उन्हें चैतन्य कर दिया ।

दोनों ने सामने की ओर देखा, तो सन्न रह गये । जङ्गल में भयानक आग लगी हुई थी, जिसकी लपटें आकाश का चुम्बन कर रही थीं ।

पचासों कोस तक, जहाँ तक दृष्टि जा रही थी, आग के धूँ से आकाश भरा हुआ था । बड़े-बड़े वृक्ष घास-फूस की तरह उस दावाग्नि में भस्म हो रहे थे ।

दोनों ने सुना था कि जंगल में कभी-कभी अपने आपही भयानक अग्नि प्रकट हो जाती है, जिससे सैकड़ों कोस तक का जंगल जल कर राख हो जाता है—आज उन्होंने उस दृश्य को स्वयं अपने नेत्रों द्वारा देख लिया । अब उनकी समझ में उन जानवरों के भाग जाने का कारण आ गया । वे समझ गये कि उसी दावाग्नि के भय से व्याकुल होकर वे हिंसक तथा अहिंसक जन्तु साथ-साथ भगे जा रहे थे !

अब उस नीम के बन में भी आग लग गई थी और नीम का विषैला कड़वा धूआँ फैल रहा था चारों ओर । अब तो उन्हें भी अपने जान के लाले पड़ गये ।

यदि वे शीघ्र ही भागकर अपने प्राणों की रक्षा नहीं करते, तो वह भीषण अग्नि उनके रक्त-माँस एवं अस्थिपञ्जर को जलाकर भस्मसात् कर देगी । अतः वे दोनों भी उसी ओर को दौड़ चले जिधर वे जानवर भाग कर गये थे । उसी ऊसर में जाकर उन्हें शरण मिली, क्योंकि वहाँ एक भी वृक्ष न होने के कारण आग के वहाँ तक आने का भय नहीं था ।

दोनों ने देखा कि वे सब जंगली जानवर भी उसी ऊसर में पंक्ति-बद्ध खड़े हुए आतुर दृष्टि से उस भस्मप्राय बन की ओर देख रहे थे । आग तेजी से फैल चुकी थी । भयानक शोर के साथ दानवाकृति वृक्ष भस्म होकर पृथ्वी की गोद भर रहे थे ।

दोनों ने अपने तमचे की सहायता से पुनः दो हिरन मारे और तब अपनी पूरी लुधा शान्त की। बहुत सा मांस बच भी रहा ! दो दिन तक वह आग धधकती रही और वे दोनों उसी ऊसर में बैठे रहे, इस प्रतीक्षा में कि वह भयानक अग्नि शान्त हो तो आगे बढ़ें। इस बीच में उन दोनों ने चार हिरन और मारे थे और उनके मांस को अपने साथ ले चलने का निश्चय किया था, ताकि भोज्य पदार्थ न मिलने पर उसी पर अवलम्बित रहा जाय।

तीसरे दिन, उसी भस्मसात् जङ्गल के मध्य से वे फिर आगे बढ़े। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जा रहे थे, त्यों-त्यों राख के ढेर दृष्टिगोचर हो रहे थे। लगातार पाँच दिनों तक वे चलते गये, परन्तु अभी तक उस जले हुए जंगल का ओर-छोर न मिला और न तो कहीं किसी प्रकार की खाद्य सामग्री ही प्राप्त हुई। यह उन्होंने बहुत बुद्धिमानी का कार्य किया था कि हिरन का पर्याप्त मांस अपने साथ ले लिया था—नहीं तो इस बार की यात्रा में भूखे रह कर उन्हें या तो जान देनी पड़ती या एक आदमी दूसरे को मार कर खा जाता।

छठे दिन उन्हें अने सामने एक बहुत ऊँचा लाल रंग का पर्वत दिखाई पड़ा। उसे देखते ही रसिक चिल्ला उठा—“लो मित्र ! हम ‘गेरुपर्वत’ पर आ पहुँचे। बस इस पहाड़ के उस पार जाते ही हम दोनों धन धान्य तथा स्वर्ण से परिपूर्ण ‘चंगदेश’ में पहुँच जाँयगे।”

खंगबहादुर की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। आखिर वे नाना प्रकार की यातना सहन करते हुए उस भयानक देश में पहुँच ही गये। यह सोच कर उनकी सारी थकावट दूर भाग गई और वे दौड़ते हुए “गेरुपर्वत” के पास जा पहुँचे।

परन्तु उस पर चढ़ना उन्होंने जितना सरल समझा था, उतना ही कठिन प्रतीत हुआ।

वह पर्वत इतना ढालुआँ तथा बलुहा था कि पैर थमते ही न थे।

दो तीन बार कुछ दूर तक चढ़ कर फिर दोनों नीचे ढुलक पड़े थे, जिससे उनके बदन में लाल गेरू पुत गया था। अब उनकी सूत ही अजब तरह की हो गई थी। फिर भी दिन भर के कठोर परिश्रम के बाद वे दोनों उस “गेरुपर्वत” पर चढ़ सकने में समर्थ हो सके। चढ़ जाने पर वे उस पार सरलतापूर्वक ढुलकते हुए उतर गये। अब उन्होंने अपने सामने एक विचित्र देश देखा।

वही था चंगदेश !

दूर से ही सोने के बने हुए अगणित मकान सूर्य की प्रखर आभा में चमचमा रहे थे।

मारे प्रसन्नता के दोनों एक दूसरे से लिपट कर रोने लगे, देर तक रोते रहे। आज इतना कष्ट सहन करने के पश्चात् उनकी मनोकामना सफलीभूत हुई थी, परन्तु उन पर अभी आगे कौन-सी भयानक विपत्तियाँ आनेवाली हैं, इस पर उन दोनों ने तनिक भी विचार न किया था। वे तो सुनहले भविष्य की रेखा देख कर मुग्ध हो उठे थे। उन्हें किसी बात की परवाह न थी।

अन्त में आगे की कार्य-प्रणाली निर्धारित करने के लिये उन्होंने अपनी तिलस्मी पुस्तक निकाली और पढ़ने लगे। अन्त में लिखा था—

“इस देश में आकर तुम्हें सबसे पहले अपनी जान की फिक्र करनी पड़ेगी, क्योंकि यहाँ के मूल निवासी विदेशियों के साथ प्राणघातक व्यवहार करते हैं। यहाँ जितने भी विदेशी आये हैं, सभी अपनी गलती से इन भयानक चंग निवासियों के हाथ पड़ गये हैं और ‘रक्त-मन्दिर’ में नृशंसतापूर्वक उनका बलिदान कर दिया गया है। तुम सावधान रहना और यहाँ के निवासियों से बच कर कार्य करना। यदि तुम इस ‘गेरुपर्वत’ की थोड़ी-सी मिट्टी लेकर अपने शरीर के अंग-प्रत्यंग पर मल लोगे, तो तुम्हारी आकृति बहुत कुछ यहाँ के मूल निवासियों जैसी हो जायगी, तब

तुम उनमें सरलतापूर्वक मिल जा सकोगे। यहाँ से तुम ठीक 'रक्त-मन्दिर' के पास चले जाना। यदि तुम्हारे पास कोई तिलस्मी हथियार या पोशाक नहीं है, तो 'रक्त-मन्दिर' में प्रवेश करने का साहस न करना। 'रक्त-मन्दिर' के दक्षिण कोने पर एक स्वर्ण चबूतरा दिखाई पड़ेगा, उमे तुम्हें अपनी बुद्धि से खोलना पड़ेगा। वही 'रक्त-मन्दिर' का "प्रवेशद्वार" है। इससे आगे तुम्हें स्वयं अपनी बुद्धि पर निर्भर रह कर कार्य करना होगा। सावधान ! यह तिलस्म है, बिना विचारे कोई कार्य न कर बैठना, नहीं तो प्राण संकट में फँस जायगा। इत्यलम् ।”

चटपट दोनों ने “गेरुपर्वत” से थोड़ी गेरू लेकर अपने अंग-प्रत्यंग पर मला। वास्तव में उनके रंग-रूपा में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। अब वे निर्भय होकर आगे बढ़े। हाँ ! उन्होंने अपने-अपने तमंचे तैयार रखे, ताकि समय पड़ने पर उन्हें काम में ला सकें।

आगे बढ़ने पर उन्हें चंगदेश के बहुत से निवासी मिले, परन्तु किसी ने भी उन दोनों पर विदेशी होने की शंका न की और वे दोनों समुशल 'रक्त-मन्दिर' के पास जा पहुँचे।

उस समय चंगदेश का सेनापति व्योम वहाँ उपस्थित था। वह बड़ा ही धर्त एवं चतुर था। उसने इन दोनों को देखा—तब इन्हें अपने पास बुलाया।

ये दोनों बेभड़क उसके पास चले गये, परन्तु जब इन दोनों ने उस चंगदेशीय सेनापति को ध्यानपूर्वक अपनी ओर देखते पाया, तो समझ गये कि वह उन्हें पहचान गया है कि ये दोनों व्यक्ति विदेशी हैं।

उसी समय व्योम चिल्ला उठा —“पकड़ो ! विदेशियों को !”

सैफ़ों की संख्या में चंग निवासी इन दोनों पर दूट पड़े। परन्तु इन दोनों ने फुर्ती से अपने-अपने तमंचे निकाल लिये और दो चार गोलीयाँ लगते ही फिर उन लोगों को इन दोनों की ओर बढ़ने का साहस

न हुआ । चंगदेश में तमञ्चा एक नई वस्तु थी । यहाँ के निवासियों ने कभी ऐसे शस्त्र की कल्पना तक न की थी ।

अब रसिक और खंगबहादुर तेजी के साथ 'रक्त-मन्दिर' की चहार-दीवारी लाँघ कर भीतर जा पहुँचे और उस जगह जाकर खड़े हो गये, जहाँ किताब के लेखानुसार सोने का एक ऊँचा चबूतरा था ।

जनता अभी तक उन दोनों के गले पड़ी थी । यद्यपि लोगों को उनके पास आने का साहस नहीं हो रहा था, फिर भी चहारदीवारी की आड़ से वे उन दोनों पर तीर चला रहे थे ।

एकाएक रसिक का हाथ किसी यन्त्र पर जा पड़ा और चबूतरे का एक भाग पल्ले की तरह खुल गया । नीचे उतरने के लिये सीढ़ियाँ दृष्टि-गोचर हुई । दोनों फुर्ती के साथ उसमें उतर गये ।

वह दरवाजा अपने आप बन्द हो गया । अब वे दोनों एक अनजानी और भयंकर जगह में थे । यहाँ से आगे बढ़ने का रास्ता उन्हें स्वयं उत्पन्न करना था । आगे एक बन्द दरवाजा दिखाई पड़ा, जिसे उन्होंने किसी प्रकार खोला । एक सुरंग थी, जिससे दोनों आगे बढ़े । शीघ्र ही वे दोनों एक मनोहर उद्यान में पहुँच गये ।

बीच में तो बाग लगाया गया था और चारों ओर तरह-तरह के मकान थे—सभी सोने के बने हुये । यहाँ की रमणीयता से उन दोनों का हृदय अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वे दोनों तरह-तरह के फल खाकर अपनी लुत्ता के निवारण करने में निमग्न हो गये ।

दोनों नीची दृष्टि किये हुए बातचीत करने में निमग्न थे । दोनों में से किसी ने भी नहीं देखा कि पूर्व-ओर के मकानों के सिलसिले का एक दरवाजा धीरे से खुला और एक भयंकर मूर्ति ने उस दरवाजे से सर बाहर निकाल कर उन दोनों की ओर देखा, पुनः गायब हो गई, परन्तु दरवाजा खुला ही रहा ।

थोड़ी ही देर बाद पश्चिम ओर के मकानों के सिलसिले का भी

एक दरवाजा खुला और एक दूसरी भयानक शक्ति ने अपना सर बाहर निकाल कर उन दोनों की ओर देखा और पुनः लुप्त हो गयी। वह दरवाजा भी खुला ही रहा।

रसिक और खगवहादुर दोनों में से किसी ने भी इसे न देखा। वे निश्चिन्त होकर बातचीत करने में तल्लीन रहे।

उसी समय पूर्व ओर से आवाज आई—‘हे!’ दोनों ने चौंक कर उस ओर देखा, तो देखते क्या हैं कि पूर्व ओर का एक द्वार खुला है और उसमें से पीतल का एक लम्बा हाथ निकला हुआ उन्हें अपनी ओर बुला रहा है। दोनों पूर्व की ओर बढ़े। उनके हृदय में इस समय महान् कौतूहल हल्लोलित हो रहा था।

उस समय पश्चिम की ओर से आवाज आई—‘हे!’ चौंक कर दोनों ने फिर पीछे मुड़ कर देखा—तो क्या देखते हैं कि पश्चिम ओर का भी एक द्वार खुला है और उसमें से भी पीतल का एक लम्बा हाथ बाहर निकला हुआ उन्हें अपनी ओर बुला रहा है।

अब उन्होंने पूर्व जाना छोड़ कर पश्चिम की राह ली। जब वे दोनों पश्चिम के दरवाजे के पास पहुँचे, तो देखते क्या हैं कि वह लम्बा हाथ पास आने से मना कर रहा है और उन्हें लौट जाने का इशारा कर रहा है। अब वे पूर्व की ओर चल पड़े, परन्तु पास पहुँचने पर पूर्व वाले हाथ ने भी पास आने से मना कर दिया।

दोनों आश्चर्य एवं विस्मय से पागल से हो उठे। पूर्व वाला हाथ जब उन्हें अपने पास बुलावे और वे दोनों जाँय, तो पास जाने पर वह न आने का इशारा करे। ऐसा ही पश्चिम ओर का भी हाल था।

अन्त में रसिक ने पूर्व की ओर और खगवहादुर ने पश्चिम की ओर जाने का निश्चय किया। दोनों बढ़ चले। इस बार उन हाथों ने उन्हें पास आने से नहीं मना किया, वरन् उन दोनों के पास जाते ही कमरे के भीतर घुसकर गायब हो गये।

रसिक पूर्व के दरवाजे में और खंगबहादुर पश्चिम के दरवाजे में घुस गये । उनके घुसते ही दोनों दरवाजे बन्द हो गये और न जाने कहाँ से एक विकट हँसी सुनाई पड़ी ।



१०

आज सभी चंगनिवासियों के मुख पर भय की रेखा छाई हुई है । चारों ओर भयानक सन्नाटा है । मालूम पड़ता है कि वहाँ के लोग भय के मारे अपने अपने घरों में छिपे बैठे हैं ।

चंगदेश के लोग यद्यपि वीर होते थे, फिर भी डरपोक थे । उनकी वीरता कुछ खास स्थानों तक ही सीमित रहती थी । यही कारण था कि जब आज उन लोगों ने यह सुना कि चंगदेश में दो भयानक विदेशी आ पहुँचे हैं, जिनके पास आग उगलने वाले शस्त्र हैं, तो वे भय से व्याकुल होकर अपने अपने घरों में जा छिपे हैं । केवल बहुत आवश्यक-कीय कार्य से ही घर के बाहर पैर रखने का वे साहस करते हैं ।

यह सत्य बात थी कि खंगबहादुर और रसिक के तमंचों ने तमाम चंगदेश में एक हाहाकारमयी क्रांति तथा भय की सृष्टि कर दी थी । जहाँ देखो वहीं लोग दबी जुबान से डरते हुए उन दोनों भयानक विदेशी आदमियों तथा उनके आग उगलने वाले शस्त्रों की ही चर्चा कर रहे थे ।

चंगदेश के लोगों को अब ऐसा ज्ञात हो रहा है, मानों केवल वे दोनों विदेशी आदमी अपने आग उगलने वाले शस्त्रों की सहायता से महाराज विशाल के सुविस्तृत राज्य पर एक ही दिन में अधिकार कर लेंगे ।

चंगदेश में सेनापति व्योम सबसे अधिक वीर तथा साहसी गिना जाता था। उस देश भर में कोई भी ऐसा वीर व्यक्ति न था जो सेनापति व्योम के आगे ठहर कर अपनी वीरता प्रदर्शित कर सके। परन्तु इस समय सेनापति व्योम भी उन विदेशियों के भयानक शस्त्रों का आग उगलना देखकर भय से काँप उठा था। उसका कलेजा धड़क रहा था कि कहीं वे भयानक आग उगलनेवाले शस्त्र उसी पर न आग बरसाने लगें।

उसके सामने इस समय बड़ी ही विकट समस्या थी। यदि वह तर्नक भी कायरता प्रकट करता है, तो चंगवासी उसे कायर समझ कर घृणा करने लगेंगे और यदि वह अपनी अकड़ पर अड़ा हुआ प्रस्तुत रहता है, तो अवश्य ही उन विदेशियों के आग उगलने वाले शस्त्रों से तड़प-तड़प कर प्राण देता है।

उधर चारों ओर यह बात भी फैल गई थी कि वे दोनों विदेशी 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में जा घुसे हैं। यह और भी डर की बात थी, क्योंकि चंगवासी और स्वयं सेनापति व्योम भी इस बात को मानते थे कि जो व्यक्ति 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में घुस सकता है, वह मामूली आदमी नहीं हो सकता।

उस दिन, जब कि खंगब्रहादुर और रसिक चबूतरे वाले रास्ते से 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में घुस गये, तो सेनापति व्योम बहुत भयभीत हो उठा।

वह न जाने क्या-क्या सोचता हुआ महाराज विशाल के राजमहल की ओर बढ़ा, क्योंकि वह जानता था कि चंगाधिपति महाराज विशाल तिलस्म के बादशाह कहे जाते हैं, अतः यह आवश्यक समाचार उन तक पहुँचना बहुत जरूरी था।

उस समय महाराज विशाल अपनी पुत्री राजकुमारी नीरा के साथ

कुछ बातचीत कर रहे थे कि प्रहरी ने सेनापति व्योम के आने का समाचार सुनाया ।

सेनापति जैसा क्रूर एवं व्यभिचारी था, यह सभी जानते थे, अतः कुसमय में उसका आना सुनकर दोनों चिन्तित हुए । राजकुमारी नीरा उठ कर अपने महल को चली गई, तब तक मस्तक पर चिन्ता की रेखायें लिये हुए सेनापति व्योम भी आ पहुँचा ।

उसने और दिनों की भाँति महाराज विशाल के सामने अशिष्टता का व्यवहार नहीं किया—वरन् आज बड़ी ही नम्रतापूर्वक झुक कर उन्हें अभिवादन किया ।

महाराज बोले—“क्या है सेनापति ? तुम्हारे मुख पर चिन्ता की रेखायें क्यों उपस्थित हैं ? तुम ऐसे असमय में मुझे कौन से आवश्यक कार्य से अवगत कराने आये हो ?”

व्योम—“मुझे ज्ञात करें महाराज ! मैंने असमय में आपको कष्ट अवश्य दिया है, परन्तु कार्य अत्यन्त आवश्यक तथा शां्रता का था—इसलिये मैं श्रीमान् को समाचार देने के लिये बाध्य हो गया । आज इस चंगनगरी में दो भयानक विदेशियों का आगमन हुआ है । उनके पास आग उगलनेवाले मारक शस्त्र हैं । १०० हाथ की दूरी पर खड़े हुए अपने शत्रु को वे सरलतापूर्वक मार सकते हैं । हमें अपने देश की रक्षा का प्रबन्ध कर रखना चाहिये ।”

महाराज—“इस समय वे दोनों विदेशी कहाँ हैं ?”

व्योम—“वे चबूतरे वाले मार्ग से ‘रक्त-मन्दिर’ के भीतरी तिलस्म में घुस चुके हैं । यही मेरी चिन्ता का कारण है । मैं तिलस्म में यदि जाने की शक्ति रखता होता, तो अवश्य तिलस्म में घुसकर उन दोनों को पकड़ता । परन्तु मैं असमर्थ हूँ । अब तो बस महाराज का ही सहारा है । महाराज ही तिलस्मी मामलों में दखल दे सकते हैं । मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता ।”

महाराज—“तुमने तो यह विचित्र चिन्ता एवं भय की बात सुनाई सेनापति ! यदि वे दोनों विदेशी ‘रक्त-मन्दिर’ के तिलस्म में घुस चुके हैं, तो यह वास्तव में समग्र चंगदेश के लिये भय की बात है। आज मुझे अपने पूर्वजों की बातें याद आ रही हैं। तुम भी जानते हो कि सैकड़ों-हजारों वर्षों से चंगदेश में यह बात प्रचलित है कि ‘रक्त-मन्दिर’ के कोष पर कभी विदेशियों का अधिकार होगा। क्या वह बात वास्तव में सत्य होगी ? क्या वह बात जिसे अब तक हम केवल कहानी ही समझते आ रहे थे, वास्तव में कठोर सत्य का रूप धारण करेगी ?”

व्योम—“मुझे इन कहानियों पर तनिक भी विश्वास नहीं है और न तो प्राचीन ज्योतिष को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। मैं महाराज को वाध्य करने आया हूँ कि वे इन विदेशियों के कार्य-सम्पादन में यथाशक्ति बाधा दें। नहीं तो यदि वे सफलीभूत हो सके और ‘रक्त-मन्दिर’ के अगम कोष पर उनका अधिकार हो गया, तो हमारा क्या होगा, आपका क्या होगा ? तब आपको बाध्य होकर राजकुमारी नीरा की शादी विदेशियों से करनी पड़ेगी।”

महाराज—“मुझे तुम्हारी बात सुनकर बहुत चिन्ता सवार हो गई है। आज तक हमने विदेशियों को घृणा की दृष्टि से देखा, अब उनकी आज्ञा कैसे मान सकेंगे ? नहीं ! यह नहीं होगा सेनापति ! हम ‘रक्त-मन्दिर’ के अगम कोष पर विदेशियों का अधिकार न होने देंगे। अपनी पवित्र चंगभूमि पर विदेशियों के अपवित्र चरण न पड़ने देंगे। तुम्हारी क्या राय है व्योम ?”

व्योम—“मैं महाराज की राय से पूर्णतया सहमत हूँ। आजकल चंगदेश विदेशियों की क्रीड़ा-भूमि बना हुआ है। अभी कुछ ही दिन पहले एक विकराल बनमानुष ने स्वयं आपके शयनागार से आपकी तिलस्मी किताब चुरा ली थी। तब से आज तक उसका पता न चला और न तो वह तिलस्मी पुस्तक ही पुनः प्राप्त हुई। कहने का तात्पर्य यह

है कि बहुत दिन पहले से ही 'चंगदेश' में, मुख्य करके राजमहल तथा 'रक्तमन्दिर' में, विचित्र घटनायें घट रही हैं, जिनकी ओर अब तक हम लोगों का ध्यान नहीं गया था। परन्तु सच पूछिये तो हम लोगों को बहुत पहले ही सावधान हो जाना चाहिये था।"

महाराज—"तुम ठीक कह रहे हो सेनापति ! इसमें अवश्य ही हमारी गहरी असावधानी है। परन्तु अब मैं सावधान हो गया हूँ। मैं इसी समय तिलस्म में चलकर उन विदेशियों का पता लगाना चाहता हूँ। तुम निश्चिन्त रहो। मैं तिलस्म का सम्राट हूँ। किसकी मजाल है कि बिना मेरी आज्ञा के तिलस्मी कारगुजारी में दखल दे सके। चलो—तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा।"

व्योम—"मैं तैयार हूँ महाराज ! चलिये ! प्राण भले ही चले जाय, परन्तु हम अपने देश पर तथा पवित्र 'रक्त-मन्दिर' में विदेशियों के पैर न टिकने देंगे।"

महाराज उठकर आलमारी के पास आये और आलमारी में से न जाने क्या-क्या निकालकर अपनी जेब में रखा। फिर सेनापति व्योम को साथ लेकर एक छोटी-सी कोठरी में पहुँचे। वह कोठरी भयानक कल-पुरजों से भरी थी।

महाराज ने उनमें से एक पुरजा धुमा दिया। उस पुरजे के धुमाते ही उस कोठरी भर में एक अजीब तरह की घर-घर आवाज होने लगी, मानों बहुत से कल पुरजे चलने लग गये हों। इसके बाद ही एक तरह की मामूली आवाज हुई और सामने की साफ दीवाल में एक भारी दरवाजा दिखाई पड़ने लगा। आगे-आगे महाराज विशाल और उनके पीछे सेनापति व्योम उस दरवाजे में घुस गये।

उनके अन्दर जाते ही वह दरवाजा पुनः आप से आप बन्द हो गया और वह घर-घर की आवाज भा एकदम बन्द हो गई। महाराज और सेनापति एक सुरंग में से होकर चलने लगे। वह सुरंग यद्यपि समतल

और लम्बी चौड़ी थी फिर भी अन्धकार से पूर्ण थी। कई स्थान पर तो ये लोग सुरंग की दीवारों से जा टकराये। लगभग ५०० गज चलने पर उस सुरंग का अन्त हुआ और ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ दृष्टि-गोचर हुईं।

दोनों आदमी सीढ़ियाँ चढ़ कर एक लम्बे चौड़े कमरे में जा पहुँचे। उस कमरे में बहुत सामान थे, जो कि विचित्र और भयकारी थे। पूर्व की ओर दीवाल पर चित्रकारी करके एक बहुत बड़ा नक्शा बनाया गया था। उस नक्शे के ऊपर लिखा था—

“रक्त-मन्दिर के भीतरी तिलस्म का नक्शा”—

यह नक्शा बहुत साफ एवं सुन्दर था। नक्शे में कई स्थान पर बहुत से गुलाब के फूल बने हुए थे। महाराज इन्हीं फूलों के बीच में कुछ देखने लगे। नक्शे पर सैकड़ों गुलाब के फूल थे, जिनमें से सब तो मुझीये हुए थे, परन्तु तीन फूल इस समय खिले हुए थे।

महाराज इसे देख कर चौंक पड़े और बोले—“हैं! दो नहीं तीन आदमी इस समय ‘रक्त-मन्दिर’ के तिलस्म में घुसे हुए हैं। ये कौन हो सकते हैं। इनमें से दो आदमी तो साथ-साथ हैं और नम्बर ६ के तिलस्म में हैं। मालूम होता है कि ये अभी हाल ही में तिलस्म में घुसे हैं। परन्तु ये दोनों ऐसा जान पड़ते हैं कि तिलस्म से अधिक जानकारी नहीं रखते, तभी तो तिलस्म के भीतरी हिस्से में जाने के बदले बाहर ही बाहर जा रहे हैं.....और इधर देखो। यह तीसरा आदमी नम्बर दो के तिलस्म तक पहुँच चुका है। यह तिलस्मी मामलों से जानकार मालूम पड़ता है, तभी तो ऐसी भयंकर जगह पर जा पहुँचा है, जहाँ स्वयं मुझे भी जाने में भय लगता है। अब यह ‘रक्त-मन्दिर’ के कोष-गृह के एकदम निकट पहुँच चुका है और यदि वह ‘रक्त-मन्दिर’ के कोषगृह में जा पहुँचेगा, तो फिर कोई शक्ति उसे बाहर न कर सकेगी। स्वयं मैं भी नम्बर एक के तिलस्म में यानी ‘रक्त-मन्दिर’ के कोषगृह में

नहीं जा सकता । पहले इसी तीसरे आदमी को अपने रास्ते से दूर करना चाहिये । आओ मेरे साथ ।”

तेजी से महाराज ने किसी यन्त्र पर हाथ रखा और पास ही एक छोटा-सा दरवाजा पैदा हो गया । दोनों उसी राह अन्दर चले गये । भीतर एक लम्बी किन्तु रौशनदार सुरंग थी । बीचो-बीच एक छोटी-सी गाड़ी खड़ी थी । नीचे जमीन पर लोहे की लाइने बिछी हुई थीं, मानों उसी गाड़ी के चलने के लिये वे लाइने बिछाई गई हैं ।

महाराज और सेनापति उसी गाड़ी पर जाकर बैठ गये । महाराज ने हाथ बढ़ा कर न जाने क्या किया कि वह छोटी-सी गाड़ी पूरी रफ्तार से घड़-घड़ करती हुई सामने की ओर दौड़ चली । सेनापति व्योम हैरान था, इन तिलस्मी कश्मियों को देख कर—क्योंकि अभी तक उसे कभी भी तिलस्म में आने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ था ।

बहुत देर तक उनकी यह यात्रा जारी रही । इस बीच में उन दोनों ने न जाने कितने कोस का मार्ग तय कर डाला । अन्त में एक कमरे में जाकर वह गाड़ी रुकी । गाड़ी रुकते ही महाराज और सेनापति उतर पड़े । उनके उतरते ही वह गाड़ी जिधर से आई थी, पुनः उधर ही को लौट गई ।

अब महाराज बोले—“देखो ! अब हम लोग नम्बर दो के तिलस्म के एकदम बगल में हैं, जहाँ वह तीसरा आदमी उपस्थित है । अब हम उसे एक विचित्र तमाशे द्वारा ‘मृत्युद्वार’ में फँसाने का प्रयत्न करेंगे ।”

इतना कहकर महाराज एक ओर को बढ़े । सेनापति भी उनके पीछे चला । किस प्रकार उन्होंने विजय सिंह को पीतल के हाथों वाला तिलस्मी तमाशा दिखाकर दुबारा ‘मृत्युद्वार’ में कैद कर दिया—यह पाठक किसी पिछले परिच्छेद में पढ़ चुके होंगे ।

अब तो आप भली प्रकार समझ गये होंगे कि वह विचित्र तिलस्मी तमाशा दिखाने वाले महाराज विशाल ही थे ।

विजय जब उस विचित्र तमाशे से मृत्युद्वार में कैद हो गया, तो महाराज बोले—“चलो अब उन दोनों आदमियों की खबर लें, जो नम्बर ६ के तिलस्म में हैं। सबसे भयानक जो कार्य था, वह तो हो ही गया। अब वह मृत्युद्वार में भयानक दीवारों के बीच दबकर मर जायगा। जब हम दुबारा यहाँ आवेंगे, तो उसका निर्जीव शरीर यहाँ पड़ा देखेंगे। चलो—उधर चला जाय।”

भयानक तिलस्मी रास्ते से होते हुए महाराज विशाल और सेनापति व्योम नम्बर ६ के तिलस्म में आये। वहाँ आकर उन्होंने खंगवहादुर और रसिक को भी वही पीतल के हाथों वाला तिलस्मी तमाशा दिखाकर कैद कर लिया। यह घटना विस्तारपूर्वक पाठक पिछले परिच्छेद में पढ़ चुके हैं।

इधर से निश्चिन्त होकर महाराज बोले—“अब सब ठीक हो चुका है। इन दोनों अपराधियों को रात भर यहीं रहने दिया जाय। प्रातःकाल इनके दंड की व्यवस्था की जायगी। चलो, एक बार फिर नम्बर दो के तिलस्म में चलकर उस आदमी की दशा देखी जाय, जो इतना बड़ा साहस करके ‘रक्त-मन्दिर’ के कोषगृह के पास तक पहुँच चुका था।”

उन्हीं मार्गों से होते हुए जिस समय महाराज और सेनापति तिलस्म नम्बर दो में आये, तो देखा मृत्युद्वार सूना पड़ा था। वहाँ कोई न था। महाराज ने जोरों से अपना माथा ठोका और बोले—“उफ्! वह शैतान फँसकर फिर निकल गया। मालूम होता है कि तिलस्मी मामलों में वह मुझ से भी अधिक जानकार है। अब क्या होगा?...बोलो सेनापति! अब क्या होगा? यह विदेशी ‘रक्तमन्दिर’ के कोषगृह में पहुँच गया। अब हम उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। हम वहाँ जा भी नहीं सकते क्योंकि वहाँ जाने का रास्ता ही मुझे नहीं मालूम है। उफ्! जिस ‘रक्त-मन्दिर’ के कोष को चंगराजकुल ने कभी आँखों से नहीं देखा, आज एक विदेशी उसी का मालिक होगा? चलो, भागो, अब खैर नहीं है।”

कहते-कहते महाराज बेतहाशा वहाँ से भागे । उसी समय एक भयंकर दन्नाटे की आवाज़ हुई, मानों कहीं बीसों तोपें एक साथ दगी हों, जिससे सभी मकान थर्रा उठे ।



११

विजय जानता था कि तिलस्म में आकर एक छोटी सी भी गलती से मनुष्य की जान जा सकती है । यद्यपि वह यह भली प्रकार जानता था, फिर भी 'रक्तमन्दिर' के तिलस्म में आकर एक मामूली सी गलती कर बैठा । फल यह हुआ कि वह मृत्युद्वार नामक भयानक स्थान में पुनः जा फँसा ।

यद्यपि चंगदेश के महाराज विशाल का हाथ था उसके फँसाने में, फिर भी यदि वह सावधान रहता, तो उनके चक्के में कभी न फँसता ।

विजय ने जब उन तिलस्मी दीवाल को अपनी ओर आते देखा, तो वह अपने जीवन से एकदम निराश हो गया ।

वह समझ गया कि अब इन्हीं भयानक दीवालें के बीच दबकर वह तड़प-तड़प कर प्राण-त्याग कर देगा और उसके जीवन की समस्त आशाओं पर पानी फिर जायगा ।

अब तक वे दीवालें विजय के एकदम निकट पहुँच चुकी थीं । विजय काँप उठा । उसने एक बार परमात्मा का, पुनः अपनी माता का स्मरण किया, तत्पश्चात् मृत्यु का स्वागत करने को प्रस्तुत हो गया ।

दोनों दीवालें धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुईं एकाएक आपस में जा सटीं—उनके बीच एक ज्वाला सी उत्पन्न हुई—और आश्चर्य के साथ विजय ने देखा कि वे दीवालें बिना उसे कुछ नुकसान पहुँचाये हुए पुनः वापस लौटी जा रही हैं ।

वह आश्चर्य चकित हो उठा, परन्तु अपने स्थान पर ही बैठा रहा । कुछ दूर जाकर वे दीवालें पुनः पलट पड़ीं और विजय की ओर आने लगीं, परन्तु इस बार भी वे विजय के एकदम निकट आकर, बिना उसे किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाये ही, चली गईं । ऐसा ही कई बार हुआ ।

अब विजय समझ गया किसी कारण से वे दीवालें उसे नुकसान पहुँचाने में असमर्थ हैं । वह इस बात पर ध्यानपूर्वक सोचने लगा, तो शीघ्र ही इसका कारण उसकी समझ में आ गया । उसके शरीर पर इस समय बनमानुष की तिलस्मी पोशाक थी और कोई भी शक्ति उस तिलस्मी पोशाक का कुछ बिगाड़ नहीं सकती थी ।

अब विजय को अपने प्राणों का भय नहीं रह गया । वह उठ कर खड़ा हो गया और इस बात पर विचार करने लगा कि देखें उस भयंकर मृत्युद्वार से बाहर निकलने का कोई रास्ता भी है या नहीं ? उसे पूर्व ओर की दीवाल में लगे हुए दो पीतल के चुल्ले नजर आये । विजय कौतूहल के साथ जाकर उन चुल्लों को पकड़ कर लटक गया । उसके लटकते ही एक मामूली खटके की आवाज हुई और वह दीवाल शीघ्रता से अपनी जगह पर घूम गई । विजय भी उसके साथ घूम कर दूसरी ओर को हो गया ।

अब विजय उस भयानक मृत्युद्वार से बाहर निकल आया । उसे तनिक भी विश्वास न था कि वह उस संकटापन्न परिस्थिति से इतनी सरलता पूर्वक स्वतन्त्र हो जायगा । अब उसने अपने को एक सजे हुए विस्तृत कमरे में खड़े पाया । वह कमरा हीरे, मोतियों तथा मणि-माणिक्य से वेदीप्यमान हो रहा था ।

विजय वहाँ की अतुल सम्पदा का अवलोकन कर आश्चर्यचकित हुए बिना न रहा। उस बड़े से कमरे में केवल एक दरवाजा था, जो कि इस समय बन्द था। उस दरवाजे के ऊपर सोने की एक तख्ती लगी थी, जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—

तिलस्म नम्बर एक—‘रक्त-मन्दिर’ का कोषगृह—

विजय अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि वह एक कामवाली जगह पर आ पहुँचा है। वह लपक कर उस दरवाजे के पास पहुँचा।

उस दरवाजे के पास पहुँचते ही एक खटके की आवाज हुई और दरवाजा अपने आप खुल गया। विजय आनन्दित होकर भीतर चला गया। एक बहुत लम्बी परन्तु रोशनदार सुरंग थी, जिसकी राह चलकर विजय शीघ्र ही एक हरे भरे उद्यान में पहुँच गया। वह उद्यान तृण और काष्ठ एवं फलों के वृक्षोंवाला उद्यान न था। वह एक आश्चर्यजनक उद्यान था।

वहाँ की जमीन सोने की थी। जगह-जगह पर कंकड़ पत्थरों के बदले हींग मोती के बड़े-बड़े टुकड़े असावधानतापूर्वक पड़े थे। वहाँ के वृक्ष सोने के थे, जिनमें मणि-माणिक्य के फूल एवं फल लगे थे और न जाने किस तिलस्मी कारगुजारी के कारण सजीव वृक्षों की तरह हिल रहे थे और नाना प्रकार की हरकतें कर रहे थे। हर वृक्ष की टहनियाँ मधुर गति से हिल रही थीं, मानों उनके शरीर में मन्द-मन्द वायु के झोंके लग रहे हों। जगह-जगह पेड़ों पर सोने के तोते तथा अन्य पक्षी फुदक रहे थे तथा अपनी मीठी बोली में बोल भी रहे थे।

विजय हैरान था। उन निर्जीव पदार्थों में भला किस प्रकार जीव की सृष्टि कर दी गई थी। वे महापुरुष धन्य थे, जिन्होंने वह अजूबा तिलस्म तथा वह अनूठा उद्यान बनाया था।

उस उद्यान के बीचो-बीच एक बड़ा सा तालाब था, मगर वह तालाब पानी से नहीं भरा था। उस तालाब में लबालब श्वेत दूध भरा

था और चारों ओर स्वर्ण-घाट बने हुए थे। हीरे मोती पत्तों से जड़ी हुई लम्बी चौड़ी सीढ़ियाँ लगी थीं। दक्षिण ओर के घाट पर सोने का बना हुआ एक बारहसिंगा तालाब में पानी पीता हुआ बनाया गया था, परन्तु जब विजय उसके पास पहुँचा, तो वह इस प्रकार चौंककर सिर उठाते हुए भाग खड़ा हुआ, मानो वह कोई असली जानवर हो।

विजय आश्चर्य चकित था, उन अनूठी तिलस्मी कारीगरियों को देखकर। वह जिधर ही दृष्टि उठाता था, उधर घण्टों तक ताकता ही रह जाता था ! अन्त में घण्टों के बाद उसकी दृष्टि सोने के बने हुए उस चमचमाते बँगले पर पड़ी, जो उस अनूठे बाग के मध्य में बना हुआ था।

विजय उधर ही बढ़ा। पास जाकर उसने देखा कि उस बँगले के प्रवेशद्वार पर दो सन्तरी टहल-टहल कर पहरा दे रहे हैं। उनके कन्धों पर बड़ी-बड़ी नंगी तलवारें भी दिखाई पड़ रही थीं। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर विजय को मालूम हुआ कि वे सन्तरी वास्तव में मनुष्य न थे, वरन् तिलस्मी मूर्ति थे, जो सोने के बने हुए थे, परन्तु मामूली मनुष्यों की तरह आसानी और लापरवाही से घूम फिर रहे थे।

विजय जाकर उनके सामने खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही उन संतरियों ने चौंक कर उसकी ओर देखा, पुनः तलवार कन्धे से उतार कर अदब के साथ सलाम किया और चुपचाप एक बगल हट कर खड़े हो गये। उनका यह भाव ऐसा था, मानों वे विजय को बहुत पहले से जानते हों और विजय ही उनका मालिक हो।

विजय जो कुछ भी वहाँ देख रहा था, उससे वह हैरान और परेशान था। उसके आश्चर्य का उस समय तो और भी ठिकाना न रहा जब कि सामने का प्रवेशद्वार धीरे से अपने आप खुल गया

और भीतर से किसी ने जनानी आवाज में कहा—“महाराज ! आइये, पधारिये !”—

विजय ने अपने सामने एक स्त्री मूर्ति देखी और चौंक पड़ा। वह मूर्ति हू-ब-हू राजकुमारी नीरा के आकार की थी, परन्तु सोने की बनी थी।

वह स्त्री मूर्ति पुनः बोली—“धन्य भाग हमारे, जो महाराज के दर्शन मिले। आज हजारों वर्षों से आप की ही प्रतीक्षा करती हुई जीवन व्यतीत करती आ रही थी। आज नेत्र सफल हुए। आइये—भीतर पधारिये !”

उस स्त्री मूर्ति ने विजय को सम्मानपूर्वक लान्तर एक स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा दिया और आप दरवाजे के बाहर पुकार कर किसी से कहने लगी—“सुनो ! आज महाराज आये हैं। खूब उत्सव हो और १०१ तोपों की सलामी दागी जाय।”

विजय ने अपनी तिलस्मी किताब निकाली और देखने लगा। सक्के अन्त में लिखा था—“कोषगृह में आकर तुम्हें बहुत-सी आश्चर्यजनक वस्तुयें दिखायी पड़ेंगी। आदमियों की तरह बोलने-चालनेवाली तिलस्मी मूर्तियाँ मिलेंगी। वे सब तुम्हें कुछ भी हानि न पहुँचावेंगी। वे केवल तुम्हारे मनोरंजन के लिये हैं। वे तुम्हारा यथोचित आदर भी करेंगी, क्योंकि अब तुम ‘रक्त-मन्दिर’ के अगम कोष के एक मात्र अधीश्वर हो।”

पाँच मिनट बाद पास ही वहाँ से तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी, और मिनट-मिनट पर तोपें दगने लगीं।

इन्हीं तोपों की दन्नाहट थी, जिसे महाराज विशाल और सेनापति व्योम ने सुना था और डरकर तिलस्म से बाहर भागे थे।

विजय का वहाँ बहुत स्वागत हुआ। उसने वहाँ पर अतुल सम्पदा का कोष देखा। उस विचित्र ढंगले के हर कमरे में बड़े-बड़े हारे जवाह-

रात के ढेर के ढेर उपस्थित थे । विजय उस खजाने को देखकर पागल नहीं हो गया, यही आश्चर्य है ।

उस दिन चंगदेश-वासियों में और भी विकट सनसनी फैल गई, जब कि जमीन के अन्दर से तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी । बड़ी देर तक; समूची रात भर, तोपों की आवाज होती रही । बहुतों ने गिना भी था—पूरी एक सौ एक आवाजें हुई थीं । मालूम होता था कि जमीन के अन्दर दनादन तोपें गरज रही हैं ।

उस रात चंगनिवासी सो नहीं सके थे । मारे भय एवं आशंका के सभी ईश्वर का नाम लेते हुए अपने-अपने मकानों में पड़े थे ।

महाराज विशाल और सेनापति व्योम भी घबड़ा उठे थे । उस दिन, जब कि जमीन के अन्दर से तोपों की गड़गड़ाहट आ रही थी, महाराज विशाल एवं सेनापति व्योम राजमहल में बैठे हुए आपस में इसी समस्या पर विचार विमर्श कर रहे थे ।

महाराज कह रहे थे—“अब हमें निराश हो जाना पड़ा । मालूम हो गया कि इस सुन्दर चंग देश पर विदेशियों का शासन होगा, तभी तो इधर अनहोनी घटनाएँ घटित हो रही हैं । पूर्व पुरुषों का कथन एकदम सत्य था । वह तोसरा आदमी अवश्य ही ‘रक्त-मन्दिर’ के कोष-गृह में जा पहुँचा है और इस समय वहाँ से यह गड़गड़ाहट की आवाज आ रही है । हे ईश्वर ! क्या होगा ? हमारा क्या होगा, चङ्गदेश का क्या होगा, राजकुमारी नीरा का क्या होगा ?”

व्योम—“आप घबड़ायेँ नहीं महाराज ! राजकुमारी नीरा की रक्षा मैं करूँगा । किसकी मनाल है कि मेरे रहते हुए राजकुमारी पर हाथ लगा सके । आप राजकुमारी का हाथ मेरे हाथ में दे दें महाराज !”

महाराज—“जुप रह कापुरुष ! एक मामूली वंश में जन्म लेकर चङ्ग राजकुल की बराबरी करना चाहता है ? जा, चला जा; नहीं तो ज़बान खींच लूँगा तेरी ।”

व्योम—“किस बूते पर आप ऐसी बातें कह रहे हैं महाराज ? आपको सेनापति व्योम के हस्तकौशल की खबर है, तब भी आप ऐसी बातें कह रहे हैं ? इस समय राज्य की सारी सेना मेरे हाथों में है । आपके पास केवल थोड़े से अङ्गरक्षक हैं—वे क्या कर सकेंगे ?”

महाराज—“चले जाओ—तुम अभी चले जाओ—नहीं तो ठीक नहीं होगा।”

सेनापति व्योम उठता हुआ बोला—“देखिये महाराज ! अगर कल प्रातःकाल तक राजकुमारी नीरा मेरे मकान पर न पहुँचा दी गई, तो मैं अपनी समग्र सेना लेकर राजमहल और ‘रक्त-मन्दिर’ पर धावा कर दूँगा, फिर देखूँगा कि आपकी कौन रक्षा करता है ?”

बड़बड़ाता हुआ व्योम चला गया । महाराज राजकुमारी नीरा के पास आये । राजकुमारी नीरा ने पिता के मुँह पर चिन्ता की रेखायें देख कर पूछा—“आप उद्विग्न क्यों हैं पिताजी ?”

महाराज—“बात बड़ी भयानक हो गई है बेटी ! इधर कोई विदेशी रक्त-मन्दिर के तिलस्म में घुस कर उथल-पुथल मचा रहा है । उधर दो और विदेशी तिलस्म में पकड़े गये हैं । कल दरबार में उनका फैसला होगा ।...”

यह बात सुनकर राजकुमारी अजीब पेशोपेश में पड़ गई । अब तक उसे अपने प्यारे विजय का कुछ पता नहीं मिल सका था, इसीलिये वह निराश हो चुकी थी । यदि उसे पता होता कि महाराज के कमरे से वह तिलस्मी किताब लेकर भागने वाला बनमानुष और कोई नहीं विजय ही था—तो उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहता । परन्तु दुर्भाग्य से वह इस भेद से अनभिज्ञ थी ।

महाराज पुनः बोले—“आज सेनापति व्योम मुझे धमकी दे गया है, कि यदि रात भर के अन्दर ही तुम्हें उसके मकान पर न भेज दूँ, तो

प्रातःकाल वह राजमहल पर चढ़ाई करके तुम्हें ब्रजपूर्वक उठा ले जायगा और मुझे मार कर स्वयं ही चंगाधिपति बन बैठेगा। अब इसका कोई उपाय मेरी समझ में नहीं आता। तुम तो जानती हो कि वह कितना क्रूर एवं कठोर-हृदय वाला है।”

राजकुमारी अपने विपत्ति का हाल सुनकर रोने लगी।



१२

खंगबहादुर और रसिक ने उस तिलस्मी चक्र में फँस कर बहुत परेशानी उठाई।

उस तिलस्मी कारीगरी के ही कारण दोनों का साथ छूट गया और रसिक पूर्व की ओर की कोठरी में तथा खंगबहादुर पश्चिम ओर की कोठरी में बन्द हो गये। उस भयानक तिलस्मी तमाशे का सूत्रपात करने वाले स्वयं महाराज विशाल एवं सेनापति थे। यह पाठक पिछले परिच्छेदों में पढ़ चुके हैं।

रसिक पूर्व ओर के कमरे की ओर गया था और ज्योंही वह उस कमरे में घुसा कि दरवाजे को बन्द होता देख उसका माथा ठनका। वह समझ गया कि अवश्य ही वह किसी तिलस्मी कारीगरी में फँस गया है—हो सकता है कि खंगबहादुर भी फँस गये हों, इन्हीं सब बातों पर विचार करता हुआ रसिक उस कमरे में इधर-उधर टहलने तथा बाहर निकलने का साधन खोजने लगा। परन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी। बहुत देर तक सर पटकने पर भी उसे बाहर निकलने का कोई मार्ग

दृष्टिगोचर न हुआ। अन्त में वह सर पर हाथ रखकर बैठ गया और कुछ सोचने लगा।

कुछ ही देर बाद उसे ऐसा मालूम हुआ कि कहीं से भयानक तोपों की गड़गड़ाहट आनी प्रारम्भ हो गई है। बात वास्तव में सत्य थी और रसिक ने भय के साथ देखा कि उस कोठरी की गर्मी बढ़ती जा रही है। उसकी दीवालें, ज़मीन, यहाँ तक कि हर एक हिस्सा धीरे-धीरे गर्म होता जा रहा था और रसिक को थोड़ी देर में बेचैनी मालूम पड़ने लगी। धीरे-धीरे यह बेचैनी बहुत बढ़ गई, क्योंकि धातु की बनी हुई वह कोठरी अब तवे सी जलने लगी थी और रसिक गर्मी से व्याकुल होकर इधर से उधर दौड़ता हुआ छुटपटा रहा था।

ठीक यही हाल पश्चिम ओर की कोठरी में बन्द खंगवहादुर का भी था। वह कोठरी भी तवे सी जल रही थी।

अन्त में वे दोनों उस असह्य गर्मी से व्याकुल होकर चेतनाहीन हो भूमि पर गिर पड़े।

वे दोनों न जाने कब तक बेहोश रहे, यह उन्हें पता नहीं, परन्तु जब दोनों की चेतनाशक्ति वापस लौटी, तो दोनों ने एक दूसरे को एक-दूसरे पास पाया और दोनों मित्रों को साथ देखकर एक दूसरे को अतीव प्रसन्नता हुई—परन्तु उससे बढ़कर आश्चर्य हुआ उस स्थान को देख कर, जहाँ वे इस समय उपस्थित थे।

वह एक लम्बा चौड़ा कमरा था। सोने, हीरे तथा मोतियों द्वारा मनोहर चित्रकारी दीवारों पर की गई थी। सामने ही एक सिंहासन था, जिस पर महाराज विशाल एवं राजकुमारी नीरा बैठे हुए थे।

रसिक तथा खंगवहादुर के हाथ पीछे की ओर कसकर बँधे हुए थे और वे इस समय किसी प्रकार भी अपना बचाव नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त उस कमरे में कई सन्तरी भी मौजूद थे।

महाराज ने राजकुमारी से कहा—“यही वे विदेशी हैं, जो कल नम्बर ६ के तिलस्म में पकड़े गये हैं बेटी !”

राजकुमारी ने सर हिलाया और अपने मादक नेत्रों से खंगवहादुर और रसिक की ओर देखा ।

कामुक रसिक को ऐसा लगा कि यदि उसके हाथ खुले होते तो वह उसी समय दौड़ कर राजकुमारी को बलपूर्वक अपनी छाती से लगा लेता ।

वास्तव में राजकुमारी नीरा अतीव सुन्दरी थी । उसका सौन्दर्य चन्द्रमा सा स्निग्ध, शीतल एवं शान्त न था, वरन् था मदिरा सा मादक एवं हलाहल सा तीव्र । उसकी सूरत देखते ही उस सौन्दर्य का उन्मोह करने का तीव्र लालसा उत्पन्न हो जाती थी ।

महाराज उन दोमों से बोले---“विदेशीगण ! तुम लोगों ने पवित्र ‘रक्तमन्दिर’ के तिलस्म में उथल-पुथल मचाकर वहाँ का वातावरण अपवित्र कर डाला है । तुम लोगों का यह अपराध अक्षम्य है ।”

रसिक ने निर्भीकता पूर्वक पूछा—“महाराज के देश में ऐसे अक्षम्य अपराध का क्या दण्ड-विधान है ?”

महाराज—“प्राणदण्ड ! समझे ! ‘रक्तमन्दिर’ में महाकाल की मूर्ति के सामने तुम्हारी बलि दी जायगी । तुम्हारे कटे हुए सर से रक्त की धार बह कर रक्तकुण्ड में पुनः एकत्रित होगी और इसी प्रकार एक दिन वह रक्तबुण्ड लबालब रक्त से पुनः भर जायगा, जैसा कुछ दिन पहले था ।”

उसी समय घबड़ाये हुए एक प्रहरी ने प्रवेश किया और महाराज से बोला—“महाराज ! गुस्सा हो गया । सेनापति व्योम ने अपनी सारी सेना लेकर राजमहल एवं ‘रक्तमन्दिर’ को घेर लिया है । फाटक पर केवल थोड़े से रक्षक उसकी अपार सेना का सामना कर रहे हैं ।”

महाराज विशाल यह समाचार सुनकर चौंक पड़े। वे समझ गये कि राजकुमारी नीरा को न पाकर सेनापति व्योम ने अब खुला विद्रोह कर दिया है। इस समय सारी सेना उसी की मुठ्ठी में है। वह जो कुछ चाहे कर सकता है। राजकुमारी नीरा भी चिन्तित दिखाई पड़ने लगी।

राजमहल के फाटक से मारकाट की आवाजें आ रही थीं। वहाँ खूब घमासान युद्ध हो रहा था। परन्तु राजमहल के रक्त बहुत थोड़ी संख्या में थे—अतः सेनापति व्योम के सैनिक विजयी होकर आगे बढ़े आ रहे थे।

एकाएक महाराज बोल उठे—“अब हमारी रक्षा का कोई उपाय नहीं है—केवल एक उपाय है। यदि ये विदेशी हमारी सहायता करें, तो हम बच सकते हैं। मैंने सुना है कि इनके पास आग उगलने वाले अस्त्र हैं। क्यों विदेशी! हमारी सहायता कर सकते हो? हम तुम्हें प्राण-भिक्षा दे देंगे।”

रसिक और खंगबहादुर कुछ देर तक एक दूसरे की ओर देखते हुए कुछ सोचते रहे, फिर बोले—“हम तैयार हैं।”

बस फिर क्या था; तुरन्त ही उनके बन्धन खोल दिये गये और उनके तमंचे, जो उनसे छीन लिये गये थे, उन्हें वापस दे दिये गये।

रसिक और खंगबहादुर अपने-अपने तमंचे लेकर उस ओर दौड़ पड़े, जिधर व्योम की सेना मार-काट मचा रही थी। सेनापति व्योम घोड़े पर चढ़ा हुआ अपनी सेना को उत्साहित कर रहा था। रसिक ने तमंचा साधा और धाँय की आवाज़ हुई।

शत्रु सेना में भगदड़ मच गई। व्योम का घोड़ा घायल होकर भूमि पर गिर पड़ा, परन्तु होशियार व्योम सम्हल गया और तुरन्त जान बचाकर भागा। वह समझ गया था कि इन आग उगलने वाले अस्त्रों के आगे उसकी सारी वीरता तुच्छ एवं निष्फल है।

रसिक यदि चाहता तो अपने तमंचे द्वारा सरलतापूर्वक व्योम को मार डालता, परन्तु उसने कुछ समझ कर ऐसा नहीं किया — शायद सेनापति व्योम से उसने कोई भारी कार्य करा लेने का रास्ता सोच लिया था ।

थोड़ी ही देर की लड़ाई के बाद व्योम की सेना भाग खड़ी हुई और आज की लड़ाई में महाराज विशाल की ही विजय हुई ।

अब तो इन विदेशियों का राजमहल में खूब ही आदर सत्कार हुआ ।

X X X X.

अर्द्धरात्रि का समय है । राजकुमारी नीरा अपने शयनागार में आगम की नींद सो रही है । उसके बदन पर अधिक वस्त्र न थे । उसने सिर्फ एक मामूली साड़ी पहन रखी थी । इस समय वह बेधड़क सो रही थी, जिससे उसकी साड़ी इधर-उधर सरक गई थी । राजकुमारी का अनुपम सौन्दर्य देदीप्यमान हो उठा था । उसकी उभरी हुई छातियाँ ऐसी लग रही थीं, मानों शराब के दो प्याले औँधा कर रख दिये गये हों । उसके गले का हार खुली हुई नग्न छातियों पर खेल रहा था । श्वांस के साथ वे सुपुष्ट वक्षस्थल उठ बैठ रहे थे । कमरे में एक मद्धिम प्रकाश हो रहा था ।

एकाएक हवा का एक झोंका आया और उस कमरे का प्रकाश बुझ गया । कमरे में सूच-भेद्य अन्धकार छा गया । उसी अन्धकार में दो आदमियों के धीरे-धीरे बातचीत करने की फुसफुसाहट सुनाई पड़ी, परन्तु राजकुमारी को इसकी तनिक भी खबर न थी ।

एकाएक एक मामूली आवाज हुई, जिससे राजकुमारी की निद्रा खुल गई । उसे अपने कमरे में अन्धकार देखकर महान आश्चर्य हुआ । वह अभी इस बात पर विचार कर ही रही थी, कि उसे ऐसा मालूम हुआ कि दरवाजे की ओर से कोई आदमी उसकी चारपाई की ओर बढ़ा आ रहा है ।

राजकुमारी ने आँखें गड़ा कर देखा। तो क्या देखती है कि दो आदमी हैं—एक तो दरवाजे के पास खड़ा है और दूसरा उसकी ओर बढ़ा आ रहा है।

राजकुमारी भय से विह्वल हो उठी। उसने चिह्नाना चाहा, परन्तु उसके गले से आवाज ही न निकली। उसी समय वह आदमी उसकी चारपाई के पास पहुँच गया। राजकुमारी के मुँह से आवाज़ नहीं निकल रही थी। वह आदमी राजकुमारी की चारपाई पर धीरे से बैठ गया।

राजकुमारी ने अब ज्योंही चिह्नाना चाहा कि उस आदमी ने उसकी नाक पर न जाने कौन तीव्र गंधवाली वस्तु रख दी, कि वह चिह्ना भी न सकी और बेहोश हो गई। उस आदमी ने बेहोश राजकुमारी को पलंग पर लिटा दिया।

उसी समय दरवाजे पर के आदमी ने धीरे से कहा—“कहीं से खटके की आवाज आई है। चलो—उसे उठा कर ले चलें—सेनापति व्योम इसे पाकर अत्यन्त प्रसन्न होगा और हमारा कार्य भी कर देगा।”

उस आदमी ने राजकुमारी के बेहोश शरीर को किसी कपड़े में लपेटा, पुनः उसे कंधे पर उठाकर दरवाजे के पास आया।

तत्पश्चात् वे दोनों आदमी चुपचाप बेहोश राजकुमारी को लिये हुए न जाने किधर चले गये।

× × × ×

उस दिन, जब कि रसिक और खंगवहादुर ने अपने तमंचों की सहायता से सेनापति व्योम की सेना को पराजित कर दिया था, राजमहल में उनका खूब आदर-सत्कार हुआ था।

दोपहर को जब कि वे राजमहल के एक आरामदायक कमरे में लेटे हुए थे और पास में कोई नहीं था, तो रसिक ने कहा—“हमने महाराज विशाल की सहायता करके अच्छा काम नहीं किया।” मान

लिया जाय कि इससे हमारी जान बच जायगी मगर कुछ लाभ न हो सकेगा । हमें अब से भी सम्हल जाना चाहिये ।”

खंगबहादुर—“तुम्हारा मतलब क्या है ? साफ-साफ कहो तो मेरी समझ में आवे । पहिली बुझाने से क्या लाभ ?”

रसिक—“देखिये ! सेनापति व्योम की सहायता करने से हमारी आशा पूर्ण हो जायगी, अर्थात् यदि हम उसकी सहायता करेंगे, तो वह भी ‘रक्त-मन्दिर’ के तिलस्म का खजाना लेने में हमारी सहायता करेगा ।”

खंग०—“वह क्या सहायता कर सकेगा ?”

रसिक—“वह केवल महाराज से हमारी रक्षा करता रहेगा—बस, तिलस्म के अन्दर का कार्य हम लोग स्वयं ही निपटा लेंगे । इस राज्य भर में केवल महाराज ही ऐसे आदमी है, जो तिलस्म से जानकारी रखते हैं—अतः वे हमलोगों के मार्ग में रोड़े अटका सकते हैं । परन्तु यदि हम सेनापति व्योम को अपनी ओर मिलाये रहेंगे तो वह या तो महाराज को मार ही डालेगा या उन्हें कैद किये रहेगा—तब तक हमलोग ‘रक्त-मन्दिर’ के तिलस्म में घुसकर वहाँ का अगाध धन बाहर निकाल लावेंगे । सेनापति व्योम को भी उसका कुछ हिस्सा दे देंगे ।”

खंग०—“खूब ! यह बात तो तुमने खूब सोची । यही करना ठीक होगा । परन्तु आज की लड़ाई में तो सेनापति व्योम हमसे जल भुन गया होगा । अब उसे प्रसन्न करने का क्या मार्ग हो सकता है ?”

रसिक—“है मार्ग ! आप केवल मेरी सलाह से चलिये । फिर देखिये कि सफलता प्राप्त होती है या नहीं ? सुनिये ! आज रात में हम लोग...”

इसके बाद वे लोग धीरे-धीरे बातें करने लगे । उनकी ये बातें बहुत देर तक होती रहीं ।

लगभग ४ घंटे में उनकी ये बातें समाप्त हुईं। उठते-उठते रसिक ने धीरे से कहा —“इस प्रकार मेरी भी मनोकामना पूर्ण हो जायगी, और काम भी बन जायगा।”



१३

प्रातःकाल हुआ और सूर्य की अरुणिम रेखा पूर्वाकाश पर नृत्य कर उठी। चंगदेश के लिये वह प्रातःकाल अत्यन्त वैषम्य था। महाक्रूर सेनापति व्योम के विद्रोह से चारों ओर आतंक छाया हुआ था।

राजमहल में महाराज विशाल ज्योंही शयन करके उठे कि एक प्रहरी ने आकर राजकुमारी नीरा के लुप्त हो जाने का समाचार सुनाया। राजकुमारी के गायब हो जाने का समाचार सुनकर महाराज अत्यन्त व्यथित हो गये। वे पागलों की तरह इस कमरे से उस कमरे में और उस कमरे से इस कमरे में दौड़-दौड़कर राजकुमारी नीरा की खोज करने लगे। परन्तु सब व्यर्थ था। राजकुमारी का कहीं भी पता न लग सका।

अब महाराज ने सोचा कि चल कर उन विदेशियों के कमरे में भी खबर दे दें, परन्तु जब वे वहाँ आये, तो कमरा सूना पड़ा हुआ था।

न तो रसिकसाल ही वहाँ था और न तो खंगबहादुर ही। ज़मीन पर एक पुरजा अवश्य पड़ा दिखाई पड़ रहा था। महाराज ने वह पुरजा काँपते हुए हाथों से उठा लिया। उस पर साफ-साफ किन्तु छोटे अक्षरों में लिखा था—

महाराज विशाल !

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सेनापति व्योम से मित्रता कर लेना हमारे लिये अधिक लाभदायक तथा कल्याणकारक है, बजाय इसके कि आपसे मित्रता की जाय । अतः हम लोग सेनापति व्योम के पास जा रहे हैं और साथ ही साथ राजकुमारी नीरा को भी लिये जा रहे हैं ताकि सेनापति व्योम हमसे प्रसन्न होकर मित्रता कर ले ।

—विदेशी-गण ।

महाराज ने माथा ठोका । उफ् ! क्यों नहीं कल प्रातःकाल उन विदेशियों का 'रक्त-मन्दिर' में बलिदान कर दिया गया । तब यह विपत्ति क्यों आती ?

महाराज के नेत्रों में आँसू आ गये । वे असहाय होकर सिंहासन पर बैठ कर रोने लगे । वे न जाने कब तक इसी प्रकार रोते बैठे रहते, यदि उनके कानों में लगातार दो शेरों के दहाड़ने का शब्द न सुनाई पड़ता ।

महाराज चौंक कर उठ खड़े हुए । ऐसा मालूम होता था कि 'रक्त-मन्दिर' में लगातार दो विकराल शेर गर्जना कर रहे हैं । 'रक्त-मन्दिर' राजमहल के बिलकुल पास था, अतः उन शेरों की दहाड़ बहुत जोर-जोर से सुनाई पड़ रही थी ।

महाराज अभी इस आकस्मिक घटना पर विचार कर ही रहे थे कि उसी समय 'रक्तमन्दिर' का एक प्रहरी दौड़ा हुआ आया और उतावली के साथ महाराज से बोला—“महाराज ! 'रक्तमन्दिर' के वे दोनों तिलस्मी शेर इस समय दहाड़ मार कर गरज रहे हैं । इस समय उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि वे सोने के बने हुए नकली शेर हैं । ऐसा कभी नहीं हुआ था महाराज !—पुजारीजी का कहना है कि ऐसा हजारों वर्षों से नहीं हुआ था । पुजारी जी ने ही मुझे आपके पास भेजा है । वे भी घबड़ा गये हैं ।”

यह बात सुन कर महाराज के मस्तक पर चिन्ता की रेखायें खिंच आईं। वे जानते थे कि वे तिलस्मी शेर जिस दिन दहाड़ेंगे, उसी दिन 'रक्तमन्दिर' का रहस्योद्घाटन करके कोई विदेशी वहाँ प्रकट होगा। उसी के साथ उन्हें राजकुमारी नीरा की शादी भी करनी होगी।

महाराज सर पर हाथ रखकर बहुत कुछ सोचने लगे। उनके सामने इस समय कई चिन्तायें थीं। अन्त में उन्होंने राजमहल के प्रधान-रक्षक को बुलाकर कहा—“देखो ! आज 'रक्तमन्दिर' का रहस्योद्घाटन होने वाला है। वह व्यक्ति इस समय 'रक्तमन्दिर' में प्रकट होगा। इधर सेनापति व्योम की सेना ने चारों ओर से 'रक्तमन्दिर' और राजमहल को पुनः घेर लिया है। यहाँ की रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर रहा। मैं 'रक्तमन्दिर' को जा रहा हूँ—देखूँ क्या होता है ?”

रक्षक ने पूछा—“रक्तमन्दिर तक महाराज कैसे पहुँचेंगे ? राजमहल और 'रक्तमन्दिर' के बीच में व्योम की आशाध सेना भरी पड़ी है।”

महाराज—“मैं गुप्त मार्ग से जाऊँगा।”

इतना कहकर महाराज अपने शयनागार में आये। दक्षिण ओर की दीवाल में लगे हुए एक यंत्र को उन्होंने किसी क्रम से उमेठा। उसी समय घड़-घड़ की आवाज हुई और दीवाल का वह हिस्सा, जहाँ महाराज खड़े थे, बीच से फट गया। अन्दर जाने लायक दरार दृष्टिगोचर होने लगी।

महाराज तेजी के साथ उस दरार में घुस गये। उनके जाते ही वह दीवाल पुनः ज्यों की त्यों हो गई !

×

×

×

×

खगबहादुर और रसिक ने यह भली प्रकार समझ लिया था कि सेनापति व्योम को अपना मित्र बना लेने से उनकी आशा फलीभूत हो सकती है।

परन्तु उससे मित्रता करने का रास्ता कौन-सा हो सकता था, सिवा इसके कि राजकुमारी नीरा को वे किसी प्रकार उठा ले जाकर सेनापति व्योम के हवाले करके उससे मित्रता कर लें। और यही उन दोनों ने किया भी।

राजकुमारी नीरा को गायब करने वाले रसिक और खंगबहादुर ही थे।

बेहोश राजकुमारी को उठाये हुए, अर्द्ध रात्रि में ये दोनों उस ओर बढ़े, जिधर सेनापति व्योम का शिविर पड़ा था। सैनिकों ने इन दोनों को शीघ्र ही सेनापति व्योम के खीमें में पहुँचा दिया।

रात के समय उन विदेशियों को अपने खीमें में देख कर पहले तो व्योम भयभीत हो उठा, परन्तु बेहोश राजकुमारी को देखते ही वह चौंक पड़ा।

रसिक ने बेहोश राजकुमारी को ले जाकर व्योम के पलंग पर लिटा दिया और बोला—“लो सेनापति। अपनी प्रेमिका से जी भर कर प्रेम करो। हम तुम्हारी सहायता करेंगे।”

व्योम—“तुम! तुम लोग मेरी सहायता करोगे? विदेशी बन्धु-गण! तुम लोग धन्य हो। तब तो मैं सहज ही महाराज विशाल को राज्यच्युत करके स्वयं ही चंगदेश का अधीश्वर हो सकूँगा।”

रसिक—“सब्र बड़ी सरलतापूर्वक हो जायगा सेनापति!...परन्तु तुम्हें भी हमारी सहायता करनी होगी। हम लोग ‘रक्त-मन्दिर’ के बहुत से भेद जानते हैं। हम उनका रहस्योद्घाटन करके उसकी सम्पदा बाहर लावेंगे—उसमें से एक तिहाई भाग तुम्हारा रहेगा—क्यों सेनापति?”

व्योम—“ठीक!...बहुत ठीक...मैं आज ही महाराज विशाल को मृत्यु के हवाले करता हूँ...तुम लोग बाहर जाकर आराम करो।

रसिक और खंगबहादुर बाहर चले गये।

सेनापति की दृष्टि बेहोश राजकुमारी पर जा पड़ी। परन्तु उसने धैर्य रखा, यह सोच कर कि अब तो राजकुमारी उसे मिल ही गई है, फिर उतावली क्यों करे ?

प्रातःकाल होने पर सेनापति व्योम की सेना ने दुगुने उत्साह के साथ राजमहल पर आक्रमण कर दिया।

×

×

×

×

इस समय 'रक्त-मन्दिर' में भयानक शोर मचा हुआ था। महाकाल के मुख के अगल-बगल वाले दोनों शेर इस समय बहुत जोरों से दहाड़ रहे थे। कभी-कभी वे अपनी जगह पर उठ कर खड़े हो जाते थे, परन्तु आगे न बढ़ कर, फिर उसी जगह बैठ कर दहाड़ने लगते थे। भयानक गर्जन से 'रक्त-मन्दिर' का मंडप गूँज रहा था।

पुजारी तथा अन्य प्रहरी भय से काँपते हुए एक कोने में खड़े थे। किसी को कुछ भी सूझ न पड़ता था कि अब क्या करें ?

उसी समय 'रक्त मन्दिर' की दीवाल का एक हिस्सा धीरे से फट गया और उस गुप्त द्वार के रास्ते महाराज ने 'रक्त-मन्दिर' में प्रवेश किया। वहाँ की भयावह दशा देखकर महाराज भी विचलित हो उठे।

थोड़ी देर बाद वे महाकाल के मुख के पास जा खड़े हुए और हाथ बढ़ाकर न जाने क्या किया। परन्तु फिर भी उन शेरों का तड़पना न बन्द हुआ। अब महाराज आगे बढ़ आये और शेरों के बीच में बनी हुई अपनी तथा राजकुमारी नीरा की मूर्तियों के पास आकर खड़े हो गये।

उन्होंने न जाने कौन सा यंत्र दबाकर अपनी तथा राजकुमारी की मूर्तियों का मुख एक दूसरे की ओर घुमा दिया। अब उन शेरों का दहाड़ना एकदम बन्द हो गया। वे चुपचाप निर्जीव होकर अपने स्थान पर बैठ गये।

उनके शान्त होते ही छत में टंगा हुआ सोने का एक घंटा तीव्र स्वर में बजने लगा और उसके कर्कश स्वर से सबों के कान बहरे होने लगे ।

थोड़ी ही देर बाद उस घंटे का बजना अपने आप रुक गया और तब उस महाकाल के मुख में हरकत प्रारम्भ हो गई । महाकाल का मुख कभी खुलता, कभी बन्द होता—इसी प्रकार उसका मुख मिनट-मिनट पर खुलने और बन्द होने लगा । ऐसा प्रतीत होता था, मानों कोई भारी वस्तु उस महाकाल के गले के बीच अटककी हुई है, जिसे वह उगलने का प्रयत्न कर रहा है ।

लगातार पचीस तीस बार उगलने का उपक्रम करने के बाद एक बार महाकाल के मुख से एक विकराल बनमानुष की मूर्ति निकल पड़ी ।

वह विजय था, तिलस्मी पोशाक पहने हुए । इस समय वह 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष का अधीश्वर था ।

पहले तो उस भयानक बनमानुष को देखकर सभी डर गये, परन्तु अन्त में महाराज ने अपने को सन्हाला, क्योंकि अपने पूर्वजों की आज्ञानुसार इस नये विदेशी के साथ उन्हें आदर का प्रदर्शन करना था ।

महाराज विशाल ने अपना मणि-मुक्तांकित मुकुट उतार कर विजय के पैरों के पास रख दिया, पुनः जमीन पर लेट कर साष्टाङ्ग दंडवत किया । और बड़ी मुश्किल से ये शब्द कहे—“महाराज की जय हो ।”

विजय ने आदर से महाराज को उठाया और बोला—“महाराज ! आप मेरे पूज्य हैं । आपको यह शोभा नहीं देता ।”

‘रक्त-मन्दिर’ के अगम कोष के मालिक की सहृदयता देख कर महाराज विशाल अत्यन्त प्रसन्न हुए, परन्तु उसका भयंकर रूप देख कर वे संतुब्ध हो उठे । तो क्या इसी नरपिशाच के साथ उन्हें अपनी कन्या का पाणिग्रहण कराना होगा ! काश, इसका रूप भी इसके हृदय जैसा ही पवित्र एवं स्वच्छ होता, तो राजकुमारी नीरा इसे पाकर धन्य हो जाती ।

सोचते ही सोचते महाराज को राजकुमारी के विपत्ति की याद आ

गई और वे उतावली के साथ विजय से बोले—“महाराज ! मेरी कन्या का विवाह पूर्व पुरुषों ने आप के साथ करने का आदेश दिया था, परन्तु उसे सेनापति व्योम बलपूर्वक हरण कर ले गया है । इस समय उसकी सेना राजमहल के चारों ओर मारकाट मचा रही है । सिवा आपके अब और कोई सहायक नहीं है ।”

विजय यह समाचार सुनकर घबड़ा उठा और बोला—“अच्छा, आप यहीं रहिये । मैं उधर देखता हूँ ।” उसी समय उस जगह एक धड़ाके की आवाज हुई और वह विकराल बनमानुष न जाने कहाँ लुप्त हो गया । महाराज तथा पुजारी आदि आशंकित हृदय लिये खड़े ही रहे ।

X X X X

राजकुमारी नीरा को होश आ गया था और वह सेनापति व्योम के खीमें में पड़ी हुई अपने भाग्य पर रो रही थी । वह खून का घूँट पीकर रह गई थी । सेनापति व्योम लड़ाई के मैदान में था, क्योंकि उस समय युद्ध जोरों पर था । राजकुमारी को अपने चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा दृष्टिगोचर हो रहा था ।

एकाएक खेमें का परदा उठाकर सेनापति व्योम ने हँसते हुए प्रवेश किया । एक बार उसने राजकुमारी को भर आँख लोलुप दृष्टि से देखा, फिर हँसता हुआ बोला—“राजकुमारी ! अब आधे घंटे में ही तुम्हारे पिता ‘रक्तमन्दिर’ में बलिदान किये जायेंगे । तुम्हें भी अपना मार्ग निश्चित कर लेना होगा । यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरे साथ रहना चाहो, तो रह सकती हो, अन्यथा तुम्हें भी अपने पिता की तरह दुर्दशाग्रस्त मृत्यु का सामना करना पड़ेगा ।”

राजकुमारी गरज कर बोली—“चुप रह कापुरुष ! नीच !! एक स्त्री के सामने ऐसी बातें कहते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ?”

सेनापति व्योम हँसने लगा, बड़ी देर तक हँसता रहा । अन्त में वह राजकुमारी पर झपट पड़ा ।

X X X X

बाहर घमासान युद्ध हो रहा था ।

यद्यपि महाराज विशाल के शरीर रक्तक बहुत थोड़ी संख्या में थे, फिर भी वे वीरतापूर्वक सेनापति व्योम की अगाध सेना का सामना कर रहे थे ।

आज व्योम की ओर से खंगबहादुर और रसिक भी अपने तमंचे लिये हुए उन थोड़े से रक्तकों पर गोलियों की वर्षा कर रहे थे—परन्तु महाराज के वीर रक्तकों ने उन आग उगलनेवाले अस्त्रों से भी भय न खाया ।

बड़ी देर तक घमासान युद्ध होता रहा । अन्त में महाराज के रक्तकों के पैर उखड़ने लगे और व्योम की सेना विजयी होने लगी । खंगबहादुर व रसिक और भी तेजी से तमंचे चलाने लगे । मगर थोड़ी ही देर बाद आश्चर्य के साथ उन दोनों ने देखा कि सेनापति व्योम की सेना चिल्लाती हुई भाग रही है ।

दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही भय भी—यह देखकर कि एक विकराल बनमानुष क्रोध से गरज-गरज कर व्योम के सैनिकों को जमीन पर पटक रहा है ।

रसिक चीख उठा—“अरे यह तो विजय है ! इस पोशाक में मैंने इसे सैकड़ों बार पहले देखा है । यह कैसे यहाँ आया ? हे भगवान्, रक्षा करो ।”

खंगबहादुर ने उधर देखा, तो वे भी चिल्ला पड़े । परन्तु अब समय खोने का नहीं था । रसिक ने अपना तमंचा उठाया और उसे उस बनमानुष की ओर लक्ष्य करके धोड़ा दबा दिया ।

धौंय-धौंय करके बीसों फायर हुए, परन्तु उस बनमानुष का कुछ भी न बिगड़ा । वह विकराल बनमानुष चीखता हुआ इन दोनों की ओर दौड़ा ।

इन दोनों अपने प्राचीन शत्रुओं को वहाँ देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ । उसकी हिंसक प्रवृत्ति जाग्रत हो उठी । आज उसके

दोनों शत्रु उसके सामने थे । उसने लपक कर रसिक का गला पकड़ लिया और प्रबल बेग से ऊपर उठाकर झड़ाम से भूमि पर पटक दिया ।

रसिक का सर फट गया । उसकी आँतें बाहर निकल पड़ीं । आज विजय ने अपने पिता के घातक से भरपूर बदला चुका लिया था ।

जब वह खंगबहादुर की ओर लपका, तो वृद्ध खंगबहादुर आर्तनाद करते हुए उसके पैरों पर गिर पड़े और क्षमा की भीख माँगने लगे । विजय ने अपने छोटे भाई के श्वसुर को क्षमा कर देना ही उचित समझा ।

उसने खंगबहादुर को सादर उठाया और तब दोनों आदमी उस ओर बढ़े, जिधर सेनापति व्योम का खीमा था ।

दोनों आदमी खीमें के अन्दर घुस गये । वहाँ की विकराल दृश्या-वलि देखते ही खंगबहादुर ने दाँत पीसा और अपने तमंचे द्वारा सेनापति व्योम की हत्या ही कर डाली ।

विजय ने आगे बढ़कर राजकुमारी को सम्हाला । राजकुमारी उस विकराल बनमानुष को देखते ही भय से चीख पड़ी, क्योंकि उसने कभी विजय को उस रूप में देखा न था ।

उस समय विजय ने भी वह भेद किसी को बताना ठीक न समझा । खंगबहादुर को भी उसने वैसा करने का आदेश दिया ।

खंगबहादुर और विजय, राजकुमारी को लेकर 'रक्त-मन्दिर' में आये ।

महाराज विशाल अपनी जीत का समाचार सुनकर और राजपुत्री को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

उस दिन समग्र चंगदेश में खूब उत्सव हुए और नगर निवासियों ने अत्यन्त बृहत् रूप से आनन्दोत्सव मनाया ।

परन्तु राजकुमारी यह न जान सकी कि यह विकराल बनमानुष और कोई नहीं, वरन् उसका प्यारा विजयसिंह ही है ।



उस दिन रात्रि के समय जब राजकुमारी अपने शयनागार में सोई, तो उसके मस्तिष्क में अनेक प्रकार की बातें घूम रही थीं। वह अपने प्यारे विजय की याद में बहुत बेचैन थी।

अब एक नई चिन्ता भी उसे सवार हो गई थी। वह चिन्ता यह थी कि यह जो बनमानुष 'रक्त-मन्दिर' के अगाध धन का अधीश्वर हुआ है, पूर्वजों के कथनानुसार वही उसका पति होगा—परन्तु वह खूबसूरत राजकुमारी उस भयंकर बनमानुष को किस प्रकार प्यार कर सकेगी ?

यही सब सोचते-सोचते राजकुमारी को नींद आ गई और वह एक मधुर स्वप्न देखने लगी।

उसने देखा कि उसका प्यारा विजयसिंह उसकी पलंग के पास खड़ा हुआ उसे पुकार रहा है—“राजकुमारी !”

राजकुमारी चौंक पड़ी और उसकी नींद उचट गई। परन्तु जगकर उसने जो कुछ देखा, वह बड़ा ही भयंकर दृश्य था।

उसने देखा कि वही भयंकर बनमानुष उसके पलंग के पास खड़ा हुआ अपनी कर्कश आवाज में उसे पुकार रहा है—“राजकुमारी !”

राजकुमारी डरकर पलंग से उठ खड़ी हुई और अभिवादन करती हुई बोली—“महाराज ! आप यहाँ क्यों आये हैं ?”

विजय जो इस समय भी बनमानुष की तिलस्मी पोशाक पहने हुए था, बोला—“बैठो राजकुमारी ! मुझसे इतना डरती क्यों हो ? तुम तो मेरी भावी-पत्नी हो ?”

राजकुमारी—“ऐसा न कहें महाराज ! मैं प्राणों की भीख माँगती हूँ। मैं आपको प्यार न कर सकूँगी।”

विजय—“परन्तु मैं तो तुम्हें प्यार कर सकूँगा प्यारी नीरा ! आओ डरो मत, थोड़ी देर तक पलंग पर बैठकर प्रेमालाप करो ।”

विजय ने राजकुमारी को पकड़ कर पलंग पर बैठा लिया ।

राजकुमारी भय से चीखती हुई तकिये से लिपट कर रोने लगी । उसने सिर ऊपर न उठाया । उसे उस बनमानुष की ओर देखने का साहस ही नहीं हो रहा था । अब विजय ने उसे अधिक देर तक कष्ट देना उचित न समझा और अपनी भयानक पोशाक खोलकर जमीन पर रख दी और राजकुमारी से जाकर लिपट गया !

राजकुमारी नीचे मुँह किये हुए रो रही थी, अतः पोशाक का उतारना वह न देख सकी थी । जब विजय अपनी असली सूरत में जाकर उससे लिपट गया, तो राजकुमारी ने यही समझा कि वह विकराल बनमानुष ही उससे लिपट गया है ।

वह भय के मारे जोरों से चीख उठी । विजय ने उसे बहुत सान्त्वन दी और उसका मुँह ऊपर उठा कर अपनी ओर देखने को कहा ।

राजकुमारी ने डरते-डरते अपनी नजरें खोलीं । एकाएक वह खुशी से चीख पड़ी, जब कि उसने देखा कि उसका प्यारा विजय उसे गोद में दबाये हुए बैठा है ।

वह किलकारी मारकर विजय की देह से लता की तरह लिपट गई ।

और आनन्द विह्वल स्वर में बोली—“प्यारे विजय ! तुम कहाँ थे इतने दिनों तक ?”

विजय—“छिलसम की सैर कर रहा था ।”

राजकुमारी—“तो क्या तुम्हीं वह भयंकर बनमानुष थे ?—”

उसी समय राजकुमारी की दृष्टि उस बनमानुषनुमा पोशाक पर पड़ी, जो भूमि पर पड़ी हुई थी । सारी बातें उसकी समझ में आ गईं । वह विजय के शरीर से पुनः कसकर लिपट गई और बोली—“तुमने तो

मुझे अधमरा ही कर डाला था प्यारे ! भला इस प्रकार की हँसी भी कहीं की जाती है ?”

विजय—“अब तो तुम प्रसन्न हो न ? अब तो मैंने वह हँसी त्याग दी है ।”

फिर दोनों आपस में लिपट कर बहुत दिनों की धधकती हुई प्रेम-ज्वाला शान्त करने में निमग्न हो गये ।

×

×

×

×

दूसरे ही दिन प्रातःकाल विजय का यह भेद सब पर प्रकट हो गया । विजय की नवीन सूत देखते ही महाराज विशाल अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने राज्य भर में विवाहोत्सव मनाने का आदेश दे दिया ।

शुभ सायत में विजयसिंह और राजकुमारी का पाणिग्रहण हो गया । दोनों प्रेमी प्रेमिका सुहागरात के दिन असाम आनन्द में लित रहे ।

उसके दूसरे ही दिन विजयसिंह का राज्याभिषेक हुआ और वह चंगाधिराज की उपाधि से विभूषित किया गया ।

इसी प्रकार बहुत दिन व्यतीत हुए ।

एक दिन, जब कि राजमहल के एक सजे हुए प्रकोष्ठ में महाराज विशाल, विजयसिंह, राजकुमारी नीरा, खंगबहादुर आदि उपस्थित थे, महाराज खंगबहादुर बोले—“अब तो मैं अपने देश को जाना चाहता हूँ ! परन्तु कठिनाई तो यह है कि मार्ग अत्यन्त कष्टकर है । किस प्रकार पहुँच सकूँगा ?”

विजय ने कहा—“धवड़ाने की आवश्यकता नहीं—मैं एक ऐसा मार्ग जान गया हूँ, जो अत्यन्त सरल है । एक सुझाव है जो ‘रक्त-मन्दिर’ से सीधी रूप-नगर को जाती है । वह मार्ग अत्यन्त सरल है । उससे आप भली प्रकार स्वदेश पहुँच सकते हैं ।”

खंगबहादुर—“तो फिर मैं चलने की तैयारी कर देना चाहता हूँ—मेरी तबियत यहाँ बिल्कुल नहीं लग रही है ।”

महाराज विशाल—“मैं भी आप के साथ चलूँगा महाराज ! आप के देश को देखने की मुझे उकट अभिलाषा है । मैं वहाँ की सम्यत तथा अन्य बातों का अवलोकन करने को अत्यन्त लालायित हूँ ।”

खंगबहादुर—“आप खुशी से चल सकते हैं महाराज ! आपका साथ पाकर मुझे अत्यन्त हर्ष होगा ।”

दूसरे ही दिन से खंगबहादुर तथा महाराज विशाल जाने की पूरी तैयारी करने लगे । पाँचवें दिन सब आवश्यक सामानों सहित खङ्गबहादुर तथा महाराज विशाल उस सुरङ्ग के पास आये, जो सीधे रूपनगर को जाती थी । विजयसिंह और राजकुमारी नीरा भी उन्हें बिदा देने के लिये आये ।

विजय ने खङ्गबहादुर को ‘रक्त-मन्दिर’ का बहुत-सा धन भी दिया ।

अन्तिम बार विजय और राजकुमारी ने खङ्गबहादुर और महाराज विशाल के चरण छुए ।

राजकुमारी ने कहा—“देखिये पिताजी । नया देश देखकर जल्द आइयेगा । तब मैं भी चलूँगी ।”

महाराज विशाल—“तुम जरा भी न घबड़ाना बेटी ! और बे विजय ! तुम ठीक से राजकाज देखना, तब तक मैं लौट आऊँगा ।”

विजय ने खङ्गबहादुर से कहा—“आप मेरी माताजी से मेरा प्रणाम कहियेगा और कह दीजियेगा कि मैं बहुत जल्द उनकी सेवा में उपस्थित हूँगा । उनसे यह भी कह दीजियेगा कि मैंने अपने पिता की हत्या बदला ले लिया है ।” कहते-कहते विजय की आँखों में आँसू भर आये

सभी रोने लगे । वह बिदाई का दृश्य अत्यन्त करुणाजनक था ।

अन्त में महाराज विशाल और खङ्गबहादुर सुरङ्ग की राह चल पड़े, राजकुमारी नीरा और विजय आँखों में आँसू लेकर लौट आये । उस रात दोनों की तबियत बेचैन रही ।



आमोद प्रमोद एवं राज्य संचालन करते-करते विजय ने दस महीने बिता दिये ।

एक दिन जब कि विजय और राजकुमारी एक ही पलंग पर लेटे हुए एक दूसरे के आलिङ्गन पाश में आनन्द होकर मधुर बातें कर रहे थे, तो विजय ने कहा—“प्रिये ! प्रारम्भ ही से मेरा जीवन विपत्ति में ही व्यतीत हुआ है । न जाने कितने परिवर्तनों का मुझे अनुभव है । अब तो इस जगह निठल्ले मुझसे नहीं बैठे रहा जाता । तुम कहो, तो कुछ दिनों के लिये कहीं जाकर घूम फिर आऊँ ।”

राजकुमारी—“किधर जाने का विचार है ?”

विजय—“दानवदेश में !...‘रक्त-मन्दिर’ के तिलस्म के भीतर दो बाजे हैं । दोनों मजबूती के साथ बन्द हैं और उन्हें खोलने को मना किया गया है—परन्तु मेरा विचार है कि उन दोनों दरवाजों को बारी-बारी से खोल कर सैर की जाय । एक दरवाजा है दानवदेश में जाने का और दूसरा है जादूनगरी में जाने का । पहले मैं दानवदेश की ही सैर करना चाहता हूँ ”

राज०—“मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगी । मैंने पिताजी से सुना था मार्ग दोनों दरवाजे भयंकर देशों को जाते हैं—और इधर हजारों वर्षों से से बन्द हैं । कभी खुले ही नहीं ।”

विजय—“तभी तो मेरा कौतूहल और भी बढ़ गया है और मैं चाहता हूँ कि मैं इन दोनों रास्तों की भी जल्द ही सैर कर लूँ । नहीं तो मेरे पिताजी के आने पर कुछ न हो सकेगा ।”

राज०—“नहीं-नहीं—मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी प्राणेश ! तुम जाओगे तो मैं किस प्रकार रह सकूंगी !”

विजय—“मुझे विचलित न करो प्रिये ! मेरा विचार दृढ़ है, मैं जाऊँगा ही । अगर हमारा प्रेम सत्य है, तो हम दोनों पुनः मिलेंगे ।

राजकुमारी को विजय ने बहुत कुछ समझाया, तब कहीं राजकुमारी ने अपनी स्वीकारोक्ति दी ।

विजय ने दूसरे दिन समग्र तैयारियाँ कर लीं और तीसरे दिन राजकुमारी को लेकर उस भयानक काले कमरे में आया, जो ‘मन्दिर’ के तिलस्म का भीतरी भाग था । और जिसमें मृत्युद्वार, दान देश, जादूनगरी आदि भयंकर दरवाजे थे ।

विजय ने दानवदेश के दरवाजे को खोलने का निश्चय किया । राजकुमारी नीरा भी उसे वहाँ तक पहुँचाने आई थी ।

विजय दानवदेश के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ और इधर-उधर निगाह दौड़ाने लगा, ताकि उस द्वार को खोलने का कोई यंत्र मिल

विजय को अधिक परेशानी न उठानी पड़ी और उस दरवाजे में ही लगी हुई एक हीरे की मूँट पर उसकी दृष्टि पड़ी ! लपक कर उस हीरे की मूँट को घुमाना आरम्भ कर दिया ।

कई बार घुमाते ही तोप के दगने जैसी दन्नाटे की आवाज हुई विजय और राजकुमारी गिरते-गिरते बचे ।

उसी समय दानवदेश का फाटक भोके के साथ खुल गया वहाँ खड़ी दिखाई दी एक विकराल मूर्ति कि राजकुमारी और चिख कर एक दूसरे से लिपट गये ।

बहुत देर बाद विजय ने हिम्मत करके दरवाजे की ओर कदम बढ़ाया वह भयानक मूर्ति जो दानवदेश के दरवाजे में दिखाई पड़ी थी, एक भयानक मोटे अजगर की थी, परन्तु मुँह उसका बहुत ही नक एवं नरराक्षस की तरह था । वह अपना सिर उठाये क्रोधपूर्ण

से विजय की ओर देख रहा था। उसकी आँखें बिजली सी चमक ही थीं।

विजय की हिम्मत नहीं पड़ रही थी, फिर भी कायरता दिखाना उसने उचित न समझा और असीम साहस संवरण करके दानवदेश के द्वार की ओर बढ़ा।

अभी वह दरवाजे से कई हाथ दूर ही था कि उस अजगर-शरीर वाली दानव ने लपक कर विजय को अपने विकराल मुँह में पकड़ लिया। विजय चिल्ला पड़ा, राजकुमारी विजय को बचाने के लिये दौड़ी रन्तु तब तक तो वह दानव विजय को मुँह में दाबे हुए दरवाजे के मन्दर जा रहा और तेज़ आवाज़ के साथ वे दरवाजे भी बन्द हो गये।

राजकुमारी विजय के लिए तड़पती हुई बाहर ही रह गई।

उसने वह मूठ धुमाकर दरवाज़ा फिर से खोलने का प्रयत्न किया, रन्तु वह न खुला। वह रोने लगी, परन्तु अब रोने से क्या होता था ?



इसके आगे की घटनायें—

“दानव देश”

में

पढ़ें।

शीघ्र ही यह पुस्तक ‘नागिन’ के

पाठकों के समक्ष होगी।

स्व० कुशवाहा 'कान्त' लिखित

जलन	२॥)	मँवरा	३॥)
पागल	२॥)	नीलम	५॥)
बसेरा	२॥)	चूड़ियाँ	४॥)
कुंकुम	३)	नागिन	४)
अकेला	२॥॥)	पविहरा	४)
इशारा	२॥)	मदभरे नयना	५)
लवंग	४)	विद्रोही सुभाष	६)
निर्मोही	३॥॥)	अपनापराया (अप्रा०)	
आहुति	३॥)	लाल-रेखा	३॥)
मंजिल	४)	परदेसी (२भाग) ५)	
पारस	३॥)	रक्त-मन्दिर	१)
जंजीर (प्रेस में)			

स्व० कुँवर कामताप्रसाद लिखित

खून का ग्लासा	उसके साजन २॥)
३ भाग ५)	जवानी के दिन २)
दानवदेश २भाग ३॥)	कालाभूत १)

स्व० महाकवि 'मोची' लिखित

कैसे कहूँ [हास्यरस] ॥॥)

प्यारेलाल 'आवारा' लिखित

पगडंडी	४)	शबनम	२॥)
अँगड़ाई	४)	हमारी गलियाँ	२॥)
जाङ्गी रात १॥)		अभावस	१॥)
अनारकली २॥॥)		मोहमाया	३॥)
सबेरा	२॥)	सूखे पत्ते	५)
घड़कन	३॥)	पायल	३॥)
खँडहर	३॥॥)	सोलह अग्रस्त	३)
भँवर	३॥)	मुमताज़	३॥)
घायल	४)	पीली कोठी	३)
सूखे पत्ते	५)	रोते नैना	२॥)
मरघट	२॥)	नई जिन्दगी	३॥)

ज्वालाप्रसाद 'केशर' लिखित

चितायें	१॥)	चितारा	१॥)
संगीनें	२॥)	कामरेड	२)
पुखराज	३॥)	भटकती रूढ़	२॥)
चितचोर	२॥)	कसक (प्रेस में)	

प्रह्लाददेव 'मधुर' लिखित

लपटे	२॥)	छैला	२॥)
		चोट ३॥)	

गोविंदसिंह लिखित

राजरानी	१॥)	रेशमा	२॥)
प्यासे नयना	२॥)	हसीना	१॥॥)
लाल दुपट्टा	३)	चौरंगी	२॥॥)
आशियाना	२॥)	मौत की मौत	१॥)
काली घटा	२॥)	सौँवरिया	२॥॥)
सहारा	२॥)	बुलबुल	३)
बहार	२)	बगावत	२॥)
कागजके फूल २॥)		लालतारा	३॥)
पपीहा बोले आधी रात			२॥)
धीरे से धूँघट हटाये पिया			२॥)
तारों भरी रात २॥)		लगन	२॥)
मिटती रेखायें १॥)		लालहबेली	३)
बदलते रास्ते ४॥)		पैर की धूल	३॥)
शमशिर	२॥)	हमे जीने दो	३॥)
झोया जले रात भर			२॥॥)
ये भी इन्सान है ३)		मैं बेगुनाह हूँ	४)
निशानी	२॥)	आधियोंकीगोदमें	
बरसात में	३)	शमशिर	२)
सुहाग	२॥)	काजल	४)

चतुरसेन शास्त्री लिखित

आत्मदाह	४॥)	नीलमणि	२॥)
दो किनारे	३॥)	नरमेघ	२)

मिलने का पता—चिनगारी प्रकाशन, बनारस—१.

